

तीन क



तीन क

भारत के इतिहास में तीन ऐसे महापुरुष हुए हैं जिनका नाम क से आरम्भ होता है वह महाबली, पराक्रमी, समस्त विद्याओं के धनी और जब उनका जन्म हुआ, माता का मुख नहीं देखा और न ही वहाँ कोई उनके जन्म पर किसी को बधाई देने वाला था और जब इन तीनों ने आयुष्य पूर्ण होने पर कोई शोक मनाने वाला भी नहीं था। इन तीनों के नाम भारतीय संस्कृति जैन और वैष्णव में बहुत चर्चित हैं। यह है कंस, कर्ण और कृष्ण। अब हम इन तीनों पर क्रम पूर्वक दृष्टि डालते हैं। कंस श्री कृष्ण जी की माता देवकी का भाई मामा थे, और कर्ण कुन्ती पुत्र, कुन्ती श्री कृष्ण जी की भुआ थी जिससे कर्ण भुआ का बेटा भाई था।

18.10.2020

स्वतन्त्र जैन जलन्धर

कंस जन्म

महाराज अन्धक विष्णु और भोजनक विष्णु इन दोनों भाईयों के दीक्षा ग्रहण करने पर उनके पुत्र समुद्र विजय शौरीपुर में तथा उग्रसेन मथुरा में राज्य करने लगे। उसी समय महाराज उग्रसेन की पत्नी धारणी के गर्भ धारण करने के लक्षण प्रकट होने लगे। भावी शिशु की सूचना पाकर महाराज उग्रसेन का हृदय परम प्रमुदित रहने लगा। महाराज उग्रसेन सन्तान प्राप्ति की लालसा में आठों पहर प्रसन्न दिखाई देने लगे। उधर महारानी धारिणी की अवस्था कुछ निराली होने लगी। दोहद के दिनों में शुभ लक्षण तो दूर अशुभ भावनाएं जागृत होने लगी, जिसे वह मन ही मन घृणा करने लगी। दास-दासियां, मन्त्रीगण एवं महाराज उग्रसेन कुछ समझ नहीं पा रहे कि

कारण क्या है ? महाराज उग्रसेन ने दासियों के माध्यम से जानने का प्रयास किया। दासियाँ महारानी धारिणी के कुशलक्षेम जानने के प्रयास में सफल हो गईं और महारानी ने अपने दिल की बात कह दी, कि मेरे गर्भ में आने वाला जीव के कारण मेरा मन अपने पति के हृदय का माँस भक्षण करने की इच्छा जागृत करता है। जो अनिष्टकारी है। जन्म के पश्चात् कैसे कल्याणकारी हो सकता है ? इसलिए मैं चिन्तित हूँ। सन्देश महाराज और मन्त्रियों तक पहुँचाया गया। तदनुसार महारानी धारिणी को एक दिन अत्यन्त कृश और उदास देखकर महाराज उग्रसेन ने बड़े मधुर स्वर में कहा-प्रिये मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने में प्राणपण प्रयत्न करूँगा।

मन्त्रियों से विचार-विमर्श कर एक ढंग निकाला गया, महल में जहाँ धारिणी का कक्ष था उसके बगल के कक्ष में महाराज उग्रसेन को रखा गया और वहाँ एक खरगोश का वध किया गया और महाराज उग्रसेन जोर-जोर से चिल्लाने लगे, जिसकी अवाजें महारानी धारिणी ने भी सुनी। खरगोश के माँस को धारिणी के समक्ष भक्षण को कहा गया कि यह महाराज उग्रसेन का मांस है, जो उस ने भक्षण किया। दोहद पूर्ण होने पर बालक को जन्म दिया और महाराज की मृत्यु का समाचार पाकर चिल्लाने लगी और पतिव्रता होने के नाते चिता में जलकर प्राण त्यागने पर हठ करने लगी कि मन्त्रियों ने महाराज को उपस्थित कर दिया। तब भारी भूकम्प से पृथ्वी काँप गई, गगन मंडल में बिजलियों की कड़कड़ाहट से फट गया। चारों ओर भयंकर आँधियाँ के प्रचंड प्रहार से ढक लिया।

भावी अनिष्ट के सूचक बालक को एक तांबे की पेट्टी में बैत के पिटारे में सुरक्षित रखकर उसके साथ हीरे-मोतियों से जड़त आभूषण और साथ में माँ-बाप का नाम लिखकर और जन्म विवरण देकर यदि शिशु के भाग्य में जीवन लिखा होगा तो कोई प्राप्त कर इसका पालन-पोषण कर दे। सारी व्यवस्था अमावस्या की घनान्धकार रात्रि में शिशु सहित इस पटारे को यमुना की उत्तरल तारंगों मे प्रवाहित कर दिया गया और प्रचार किया गया कि बालक प्रायः मृत था।

कंस का पूर्व भव

जैन संस्कृति का यह मानना है कि जो भी महापुरुष महाबली, पराक्रमी और युद्ध कौशल मे निपुण होते है, वे पूर्व जन्मों में महान तपस्वी होते हैं। तपो राज, राजों नरक। ऐसी ही घटना कंस की है। एक बार महाराज उग्रसेन भ्रमण करने एक वन में चले गये वहाँ एक मुनिराज तपस्या में लीन (मास खमण) था महाराज ने विधिवत् वन्दना नमस्कार किया और तप के पारणे पर निमन्त्रण दिया। जब मुनिराज भिक्षा के लिए पधारे तो महल में किसी ने पूछा तक नहीं और मुनिराज वापिस लौट गये और अगला मासोपवास आरम्भ कर दिया, जब उग्रसेन को पता चला तो पश्चाताप करते फिर मुनिराज को को पारणे के लिए विनती कर क्षमायाचना करने लगे, समय आने पर मुनिराज जब आए तो पूर्व की भान्ति किसी ने विशेष ध्यान नहीं दिया और मुनि लौट कर अगले मासोपवास में लीन हो गये। जब महाराज उग्रसेन को पता चला तो फिर मुनिराज के पास जाकर कहने लगे, महाराज मैं दोषी हूँ, आप मुझे जो दंड देना चाहे मैं सहर्ष स्वीकार करूँगा और अब अवश्य पधारें।

समता विभूति महाराज ने कहा-राजन् आप निर्दोष हैं, पूर्व जन्मों में जैसे कार्य किये उनके अनुरूप ही सब कुछ होता है, मेरे लिए इस बार भी आहार का योग नहीं बान्धा था, जिससे तुम्हारी बुद्धि पर पर्दा आ गया। जो कुछ हुआ आगे से सावधान रहना, किसी भी तपस्वी को इस प्रकार कष्ट न हो।

यह सुनकर महाराज उग्रसेन बहुत प्रसन्न हुए और तपस्वी के विनय भाव से प्रेरित प्रतिज्ञा कि फिर प्रमाद नहीं करूँगा। और अगामी मासोपवास के पारणे पर अमन्त्रित किया। परन्तु समय आने पर सब कुछ भूल गये और तपस्वी जी बेरंग लौट गये, तीन मासोपवास पर शरीर जर्जर और कृष हो चुका था कि अगला मासोपवास आरम्भ कर दिया और उग्रसेन के प्रति निधान कर लिया कि इसको सबक सिखाऊँगा और देह त्याग कर महारानी धारिणी के गर्भ में आया और उग्रसेन के माँस की लालसा पैदा हो गई, जो अनिष्ट का सूचक था। जन्म लेते ही कंस का जीव एक के बाद एक कष्ट देने लगा जिससे सारी सृष्टी सिहर उठी।

सुभद्र श्रेष्ठी को बालक की प्राप्ति

संतानाभाव के कारण श्रेष्ठी सुभद्र और उसकी पत्नी का चित्त सदा चिन्तित रहता था। इसी चिन्ता में डूबे सुभद्र यमुना के एकान्त तट पर घूम रहा था कि उन्हें पानी में कुछ तैरती हुई दिखाई दी, वह ध्यान से देख रहे थे, कि कांस्य की पेट्टी उनके समीप आ गई। विचार करने लगे कि इस में क्या होगा, क्या परमात्मा ने मुझे बच्चा भेजा है, कि सपना साकार हो गया जब पेट्टी खोली तो दंग रह गया। बच्चा भी सकुशल सुभद्र कि ओर देखने लगा। बच्चे सहित वह पेट्टी को घर ले आया और बच्चे

को अपनी पत्नी की गोद में दे दिया। वह पूछने लगी कहाँ से लाए, यह किसका बच्चा है और खुशी में समाई छाती से लगाया कि उसके स्तनों में दुध आ गया और बच्चा चपचप करने लगा। कहने लगी यह तो कोई राजकुमार दिखाई देता है। इसको जन्म देने वाली कैसी माँ जिसने इसको दूध भी नहीं पिलाया। सेठ जी ने सारी कहानी सुना दी और कहा पुण्योदय से यह संयोग प्राप्त हुआ है। पुत्र की प्राप्ति के फल स्वरूप उसका नामकरण किया गया, क्योंकि काँसे की पेट्टी से मिला इस लिए उस बालक का नाम कंस रखा गया। धीरे- धीरे बालक चन्द्रमा के समान बड़ा होने लगा।

बालक कंस की राक्षसी क्रीड़ा

चार-पाँच वर्ष की आयु में वह बारह-तेरह वर्ष जैसा हृष्ट-पुष्ट अत्यन्त सशक्त दिखाई देने लगा। लॉड-प्यार में उसकी सब इच्छाएं पूर्ण होने लगी और कंस बड़ी बड़ी शरारते करने लगा। कभी किसी बालक को कूँए में फेंक देना, कभी सात-आठ बालकों को इकट्ठा कर घोड़ों की तरह दौड़ाने लगा, जिससे नगर में हा-हाकार मच गया। बड़े-बड़े पहलवानों के छक्के छुड़ा दिये। माँ-बाप ने प्यार-दुलार-फटकार से समझाने का प्रयास किया परन्तु सब बेकार। सारी खुशी मुसीबत बन गई और उनका मन विरक्त होने लगा। सभी भी संस्थाए-गुरुकुल ऐसे बच्चे को लेने से इन्कार करने लगे।

कंस को समुद्र विजय के पास भेजना

सुभद्र ने महाराज समुद्रविजय से बात की और उन्होंने ने स्वीकार कर ली। जैसे ही कंस को लाया गया महाराज समुद्रविजय ने कंस को वसुदेव को सौंप दिया। 'जैसी संगत

वैसी रंगत' परिवार के राजकुमारों के साथ जीवन भी सुव्यवस्थित और अनुशासित हो गया। उसका बल वीर्य और पराक्रम तो उत्तरोत्तर बढ़ने लगा और उसके उपद्रव कुछ समय के लिए शान्त हो गये। वसुदेव जैसे चतुर महावत ने अपनी बुद्धि से छोटे से प्रखर अंकुश से मदमस्त हाथी को इस प्रकार वश में कर लिया कि लोग आश्चर्य चकित हो गये। वसुदेव ने उसे हर प्रकार की विद्या का ज्ञान दिया। जिससे कंस महान योद्धा बन गया और वसुदेव का आभारी बन गया।

सिंहरथ विजय

इधर शक्ति मति नगरी में वसुराज के पुत्र सुवसुराज राज्य करते थे। कालन्तर में उसे छोड़कर नागपुर को अपनी राजधानी बना लिया। यहां उनके एक पुत्र पैदा हुआ जिसका नाम वृहद्रथ था, बड़ा होकर उसने अपनी राजधानी राजगृह बना ली, वहाँ उनके वंशज में जयद्रथ नामक राजा हुआ और उसका पुत्र हुआ जरासंध जो जैन संस्कृति में प्रतिवासुदेव के नाम से विख्यात हुआ। जरासन्ध महाप्रतापी, तीन खण्डों का स्वामी और सब राजे-महाराजे उसके अधीन थे। महान मगध साम्राज्य की प्रतीष्ठा से जो भी राज्य उसके अधीन नहीं थे, वे उसके आंतक से अभीभूत हो कर उसका लोहा मानते थे। परन्तु संसार मे एक से बढ़कर एक प्राणी हैं, वैताढ्य पर्वत के समीप सिंहेपुर नामक नगर था जिसका राजा सिंहरथ था, जिसे अपनी वीरता पर पूरा मान था कि जरासंध यदि वीर है तो मेरी नसों का खून भी गर्म है। बिना दो हाथ किये मैं किसी की अधीनता स्वीकार नहीं कर सकता।

उधर जरासंध भी उसकी उद्दण्डता से क्रोध में आग-बबूला हो रहा था। जरासंध ने अपने सभी सेनापतियों से विचार-विमर्श किया, परन्तु सब सिंहरथ के पराक्रम से डरते थे। इसलिए उसने दूसरे वीर-नरेशों को मान-दान देकर सिंहरथ को परास्त करने की योजना बनाई।

उस समय सबसे वीर-प्रतापी महाराज समुद्रविजय ही था। जरासंध भी समुद्रविजय को आदेश नहीं दे सकता था, मैत्री भाव से सन्देश भेजा कि जो सिंहरथ को परास्त कर देगा उसके साथ मैं अपनी पुत्री जीवयशा का विवाह कर दूँगा और दहेज में कुछ राज्य भी दूँगा।

महाराज समुद्रविजय सन्देश पाकर आसमंजस में पड़ गये। सिंहरथ पर विजय पाना कोई आसान काम नहीं। समुद्रविजय के सम्मान का प्रश्न भी है। उसने अपने सभी सेनापतियों से कहा- कि क्षत्रियों का खून अब ठंडा हो चुका है, जिससे कोई अपनी तलवार उठाने को तैयार नहीं। सभी में जोश भर गया और वसुदेव ने खड़े होकर निवेदन किया-

महाराज आपकी आज्ञा होनी चाहिए एक सिंहरथ तो क्या हजार सिंहरथों को गाजर-मूली की तरह उखाड़ फेंकूंगा। वसुदेव की घोषणा से सब के दिल गद्गद हो गये। हमें आप आज्ञा दीजिए अभी चढ़ाई कर देंगे। वसुदेव को धन्यवाद देते हुए समुद्रविजय अपनी गम्भीर वाणी से कहने लगे-

वसुदेव मैं जानता हूँ कि तुम जितना कह रहे हो उससे कहीं अधिक दिखा सकते हो। तुम जैसे कोमल शरीर को युद्ध में भेजने का मन नहीं कर रहा।

यह सुनकर वसुदेव ने फिर निवेदन किया- इस बार इस कार्य के लिए मुझे आज्ञा दीजिए, आपकी आज्ञा शिरोदार्य मैं अकेला नहीं जाऊँगा मेरे साथ कंस भी जाएगा। वसुदेव की प्रतीज्ञा को सब ने हर्ष ध्वनि से जय-जयकार किया और विजय यात्रा के लिए प्रस्थान की आज्ञा दी।

युद्ध के मैदान में सिंहरथ ने सब से पहले कंस को खत्म करने के लिए अपनी तलवार से कंस पर प्रहार कर दिया जिससे कंस की ढाल के दो टुकड़ हो गये। वह दूसरा वार करता वसुदेव ने अपने भाले के वार से उसकी तलवार के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। सिंहरथ को पकड़ना असान हो गया कि सिंहरथ की सेना में भगदड़ मच गई। सिंहरथ के हाथ-पैर बाँधकर वसुदेव के रथ में डाल दिया गया । उसकी समस्त सेना ने आत्म-समर्पण कर दिया। विजय पताका फहराते हुए राजधानी लौट आए, जहाँ भव्य स्वागत किया गया।

अब सिंहरथ को लेकर जरासंध के पास जाने की तैयारी करने लगे कि समुद्रविजय ने वसुदेव को अकेले में बुलाकर कहा-जीवयशा के लक्षण कुछ ऐसे हैं, सावधान रहना। जिससे इसका विवाह होगा उसके वंश का नाश हो जाएगा।

जरासंध ने भव्य स्वागत किया और जीवयशा के विवाह को घोषणा करनी थी कि वसुदेव ने कहा मेरा बालसखा कंस ने ही सिंहरथ पर विजय पायी है, इसलिए कंस ही उपयुक्त है। जरासंध ने कंस के वंश का कुछ मालूम नहीं, तब वसुदेव ने सुभद्र को कंस की प्राप्ति का विवरण देते हुए कहा- कि कंस उग्रसेन का पुत्र है, राजकुमार है, तब कंस ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। जीवयशा का कंस के साथ बड़ी धूमधाम से विवाह हुआ

और दहेज में उसे मनचाहा राज्य मांगने के लिए कहा- उसने मथुरा मांग ली और मथुरा का अधिपति महाराज कंस बन गये। कंस को पता चलने पर कि वह उग्रसेन द्वारा ठुकराया हुआ है, विरोध की ज्वाला भड़क उठी और जरासंध की सेना के साथ आक्रमण कर दिया और उग्रसेन को बंधी बनाकर कारागर में डाल दिया। कंस का सहोदर अतिमुक्त कुमार यह सब देखकर विचलित हो गया और जैन भगवती दीक्षा ग्रहण कर ली। कंस की बहन देवकी को वह अपने साथ ले आया, माता धारिणी ने बहुत समझाया परन्तु कंस पर कुछ असर नहीं हुआ।

वसुदेव का आभार व्यक्त करने के लिए, कंस ने मथुरा आने का निमन्त्रण दिया, वसुदेव पधारे, भव्य स्वागत किया और कंस ने देवकी के साथ वसुदेव के विवाह का प्रस्ताव रखा, वसुदेव असमंजस से पड़ गये और विरोध भी नहीं कर सके। धूमधाम से देवकी का विवाह वसुदेव के साथ हुआ। इस खुशी में कंस ने एक विशाल उत्सव का अयोजन किया। खुशी में झुमती जीवयशा मदमस्त होकर महल में टहल रही थी कि जैनमुनि अतिमुक्त कुमार भिक्षा के लिए महल में पधारे, जीवयशा की दशा देखकर लौटने लगे कि जीवयशा बोली देवर जी पधारो, बड़ा खुशी का समय है, मेरे संग नृत्य करो और रास्ता रोकने का प्रयास किया। अतिमुक्त कुमार जिस की खुशी में तुम झूम रही हो, उसका सातवां गर्भ तेरे पति की हत्या करेगा। सुनकर एकदम सतब्ध रह गई और कंस को बुला भेजा, अतिमुक्त कुमार की भविष्य वाणी सुना दी, कंस मुनि की वाणी झुठलाई नहीं जा सकती और क्रोध से अंगार बरसने लगे

कि देवकी को बालों से पकड़ कर हत्या करने लगा, कि जड़ को ही समाप्त कर दिया जाए। वसुदेव ने रोक लिया और कहा- देवकी का तो कोई दोष नहीं, रहा उसके गर्भ की बात मैं वचन देता हूँ कि सातों गर्भ तुम्हें सौंप दूँगा। वसुदेव के उपकारों के कारण, उसकी बात मान ली। वसुदेव -देवकी को लेकर प्रस्थान कर गये। विधि का विधान जब देवकी को गर्भ ठहरा उधर सुलसा को गर्भ ठहरा, सुलसा जब छोटी थी तो एक ज्योतिषी ने भविष्य वाणी की थी कि इसके सभी बच्चे मृत होंगे, घरवालों ने इसका उपाय बताने को कहा- तब ज्योतिषी ने कहा-कि आज से ही हिरणगमेषी देव की अराधना आरम्भ कर दे, सुलसा ने एक देव का चित्र बनाया और उसकी उपासना करने लगी, जब उसका विवाह हुआ तो वह देव चित्र अपने साथ ले गई और उसकी अराधना बराबर करती रही। हिरणगमेशी देव ने देखा कि दोनों के प्रसव का समय एक जैसा है, जन्म होते ही देव ने बच्चे बदल दिए, देवकी के लाल सुलसा के पास और सुलसा के मृत देवकी के पास। मृत बच्चे कंस को पहुँचाए गये। इसी तरह छः बच्चों के साथ हुआ। सातवें गर्भ के समय कंस ने देवकी और वसुदेव को कारागार में डाल दिया और सख्त पहरा लगा दिया। एक रात्रि अपने शयन कक्ष में सोई हुई देवकी ने अपने मृत बालकों के उत्पन्न होने और कंस द्वारा वध पर अपना भाग्य कोस रही थी कि तीन प्रहर बीत गये और चौथे प्रहर के अन्तिम बेला में अर्धनिन्द्रित अवस्था में जगसिंह, सूर्य, ध्वजदेव, विमान, पद्मसरोवर और निर्धूम अग्नि ये सात महाशुभ स्वप्न दिखाई दिए। सातों स्वप्न अत्यन्त मांगलिक जो भावी वासुदेव के सूचक थे। इन स्वप्नों के देखने के

बाद तत्काल गंगदत्त का जीव महाशुक्र देवलोक से चल कर देवकी के गर्भ में आया। दोहद पूर्ण होने पर श्रावण कृष्ण अष्टमी को रात्रि के समय शुभ मूर्त में देवकी के उदर से श्री कृष्ण का जन्म हुआ। वसुदेव ने एक भी क्षण व्यर्थ न जाए बालक को गोद में उठा लिया और खराटे मारते पहरेदारों को निद्रामग्न छोड़कर बालक को लेकर चल दिए। सड़कें सुनसान थी, अन्धकार व्याप्त था, काली रातों में दिव्य प्रकाश से वसुदेव आगे बढ़ते गये और यमुना भी ठाठे मार रही थी कि वसुदेव घबरा गये और बालक को लेकर यमुना में उतर गये कि यमुना का जलस्तर कम हो गया और यशोदा-नन्द के द्वार पर पहुँच गये और बालक को सौंप दिया उदर यशोदा ने एक कन्या को जन्म दिया जो उस ने वसुदेव को दे दी और लेकर वापिस कारागर में पहुँच गये, पहरेदारों ने कंस को सूचना देकर कन्या कंस के पहुँचा दी। कंस मुनि की भविष्यवाणी गलत हो गई, यह कन्या मेरा क्या बिगाड़ सकती है, इसकी हत्या करने का कोई लाभ नहीं, कहकर कन्या को जमीन पर पटक दिया और कहा- ले जाओ इसे देवकी को दे दो।

गोकल में नन्द के घर अपार खुशियाँ मनाई जा रही है और समय के साथ नटखट बालक बड़ा होने लगा। कंस ने ज्योतिषियों को बुलाकर कहा- अब मेरा काल नहीं होगा। ज्योतिषी- तुम्हारा काल पल रहा है और नज़दीक ही है यौवन अवस्था प्राप्त कर रहा है। कंस चिन्तित होकर, अब क्या उपाय हो सकता है उसको दूँढने का। ज्योतिषी- आप अपने मदमस्त चंपक हाथी को छोड़ दो जो इसको वश में कर ले समझ लेना वह आप का काल है, केशी अश्व, अरिष्ट वृषभ, काली नाग का

दमन व अपने पहलवान चाणुर को उतारा और जो इन से भिड़ जाए, समझलेना वही आप का काल है। मदमस्त चंपक हाथी को छोड़ा गया, कृष्ण और बलराम उसको वश कर के ले गये। फिर केशी अश्व को छोड़ा जब कृष्ण उसके पास गया वह तो दौड़ने लगा, कृष्ण ने उसके बाल पकड़ कर छलांग लगा कर सवार हो गया, जब ऐड़ी लगाई तो ऐसा दौड़ाया कि वह थक कर चूर हो गया, जब उसे छोड़ा तो वह निष्प्राण हो गया। जनता उसको देखने गयी तो मृत पाया। फिर वृषभ छोड़े गये, सारे नगर में वृषभों का आंतक था, कृष्ण ने उनको भी ठिकाने लगा दिया। इधर गोकुल में नन्द और यशोदा भयभीत हो गये, यदि कृष्ण को कुछ हो गया तो वह क्या करेंगे, चित्कार करने लगे, सारा गाँव इकट्ठा हो गया, कृष्ण आज तो वह सकुशल थे। काली नाग को भी नथ लिया। नगर में प्रशंसा होने लगी। कृष्ण तो गावों को लेकर बांसूरी से मस्त फिरता रहा। फिर देवाधिष्ठित सारंग पर प्रतयंचा चढ़ाए उससे सत्यभामा का विवाह कर दिया जाए। फिर चाणुर पहलवानों को उतारा गया, कोई नज़दीक नहीं आया, वह बार-बार ललकारता रहा, जनता चिल्ला उठी, कहाँ मस्त चाणुर और दुध मुँहा गवाल बालक का मल्ल युद्ध कैसे हो सकता है। कि कृष्ण-बलराम भिड़ गये, कंस ने उँचे स्वर में कहा-चाणुर यह बालक तो है नन्हा सा पर अहंकार के विष से भरा हुआ है, इसका अहंकार समाप्त कर दे। कि कृष्ण ने चाणुर को धरती पर पटक दिया और चित कर दिया, कृष्ण ने कहा- क्या तुम गोकुल में नन्द को मरवाना चाहता है .कंस अपनी तलवार लेकर कृष्ण पर वार करने लगा

कि कृष्ण मंच पर चढ़ कर कंस को चोटी से पकड़ कर घूमाया कि वह अपनी जीवन लीला समाप्त कर बैठा।

जीवयशा ने राजगृह पहुँचकर रोते-रोते अपने पिता जरासंध को अतिमुक्त मुनि की भविष्यवाणी से कृष्ण द्वारा कंस वध का सारा विवरण कह सुनाया।

जरासंध सारा विवरण सुन कर अपनी पुत्री के वैधव्य से बड़ा दुःखी हुआ और जीवयशा को आश्वास्त करते हुए कहा- पुत्री तुम मत रो, अब सब यादवों की स्त्रियाँ रोवेंगी। मैं यादवों को मार कर पृथ्वी यादव विहीन कर दूँगा।

कर्ण

पाण्डू-कुन्ती मिलन

एक चित्रकार ने अन्धकवृष्णि की कन्या कुन्ती का चित्र बनाया जैसे अप्सरा की आकृति मुस्करा रही थी। उसके अधर पल्लव मुस्कान से तनिक से खिले थे। उसके कपालों पर गुलाबी रंग, गुलाबी पुष्पों के सोन्दर्य को चुनौती दे रहे थे। उसके काले घने केश रात्रि की कालिमा को भी मात कर रहे थे। वे काले रेशम की भांति चमक रहे थे। उसकी साड़ी रंग-बिरंगे पुष्पों के सौन्दर्य को अपने दामन में छिपाये थी कि उसके उन्नत वक्षस्थल गर्वित सेबों की भांति रेशमी कपड़ों में से झाँक रहे थे। वह खड़ी थी अचला। वह चित्र पाण्डू ने देखा, सभ्यता के नाते गर्दन झुका ली, फिर पुनः टिक-टिक नजर से निहारने लगा । पाण्डु चाहते हुए भी दृष्टि नहीं हटा सका, क्योंकि उसका मन मुग्ध हो चुका था।

चित्रकार से कहा- कैसी सुन्दर कल्पना की है, क्या ऐसी कोई अप्सरा है, जो इतनी सुन्दर हो। चित्रकार ने पाण्डू नृप पर दृष्टि डाली और अनुमान लगाया कि यह कोई नृप ही है। प्रणाम कर के बोला- राजन यह कल्पना नहीं वास्तव में एक सुन्दरी का चित्र है। इतनी सुन्दर इस धरती पर, नृप ने विस्मत होकर पूछा-

जी हाँ यह कुन्ती का चित्र है, अंधकवृष्णि की कन्या। वास्तव में वह इतनी रूपमती है।

जी हाँ वह अपने रूप में अद्वितीय है. अप्सराएँ भी उसके सामने हीन है।

पाण्डू को इस महान सुन्दरी को प्राप्त करने की इच्छा लेकर चित्रकार को अपने साथ महल में ले गया। महल में जाकर चित्र पर निगाहें डाल कर देखता रहा और चित्रकार

को बहुमूल्य उपहार देकर विदा किया। चित्रकार तो चला गया ,पाण्डू को एक तड़फ दे गया।

उधर वह चित्रकार चित्र लेकर अन्धकवृष्णि नृप के दरबार में पहुँचा और आदमकद चित्र दिखाया। अन्धकवृष्णि नृप ने चित्र की ओर देखकर कुन्ती पर निगह डाली और कह उठे कुन्ती देख कर मुझे बताओ तेरे में और इस चित्र में क्या अन्तर है। कुन्ती देखकर कहने लगी ऐसा प्रतीत होता है मैं दर्पण के आगे खड़ी हूँ। महाराज ने चित्रकार की प्रशंसा करते हुए कहा-मांगो तुम क्या चाहते हो। चित्रकार, महाराज आपकी प्रशंसा ही मेरे लिए बहुत है। महाराज अब इसके लिए कोई वर आपकी नजर में। चित्रकार ने पाण्डू की बहुत प्रशंसा की, जिसे कुन्ती सुन रही थी कि उसके मन में पाण्डू के प्रति लगाव हो गया और उसको अपना पति मान बैठी। अब दोनों तरफ प्रेम की आग भड़क रही है। कुन्ती निश्चय कर चुकी कि मैं विवाह करूँगी तो पाण्डू से नहीं तो जीवन भर अविवाहित रहूँगी। धीरे-धीरे यह बात दासी के कान में पड़ गई। उधर महाराज अंधकवृष्णि को महाराज धृतराष्ट्र का सन्देश आया कि उसने पाण्डू के लिए कुन्ती का वर मांगा है। पता चला कि पाण्डू नृप पाण्डू रोग से ग्रसित है, अतः कुन्ती का विवाह उससे नहीं हो सकता।

पाण्डू के पास एक अंगूठी थी जिस के सहारे वह कहीं भी पहुँच सकता था। उसके सहारे वह कुन्ती के महल के उद्यान में जा पहुँचा, कुन्ती भी टहल रही थी। पाण्डू भी उसे देखकर समझने लगी कि यह कोई किन्नर देवांगना ही है, जिस के मुँह पर चन्द्रमा की आभा विद्यमान है, कुचों और नितम्बों के भार

से जिसकी कमर लचक रही है वह मद के उन्माद से विलक्षण उन्मादिनी प्रतीत होती है। यह परम सुन्दरी है।

आप कौन है ? इस नारी उद्यान में, आप कैसे चले आए। यहाँ तो पुरुष का आना वर्जित है। कुन्ती ने साहस कर पूछ ही लिया।

देवी अपनी दृष्टता के लिए क्षमा चाहता हूँ। मैं हस्तिनापुर नरेश पाण्डू हूँ। मैं अपनी विलक्षण मुद्रिका के सहारे कुन्ती की खोज में आया हूँ। क्या आप ही कुन्ती है नाँ?

कुन्ती हर्ष विभोर हो उठी, कि यह तो मेरे स्वप्नों का राजा आ गया है। कुन्ती ने नमस्कार किया और कहा क्या आज्ञा है महाराज?

पाण्डू ने दासी को दूसरी ओर जाने का संकेत दे दिया। आगे बढ़कर कुन्ती को अपने बाहूपाश में बांध लिया।

कुन्ती- मैं भी अपने हृदय से तुझे स्वीकार कर चुकी हूँ। फिर भी अभी कुमारी हूँ। अपने कौमार्य की रक्षा करना मेरा कृतव्य है। अतः आप ऐसी कोई बात न करें जो कौमार्य की पवित्रता को भंग कर दे। कुन्ती ने हाथ जोड़ कर विनम्र प्रार्थना की।

पाण्डू- जब से मैंने तेरा रूप चित्र में देखा और अब मेरे सामने है तो मैं तेरे साथ सहवास करने का आतुर हूँ। इसमें गलती मेरी नहीं, तेरा रूप है। तेरे मादक रूप ने मुझे उतेजित कर दिया है। अब मैं अपने काबू से बाहर हो चुका हूँ।

कुन्ती- मैं अपने हृदय को चीर कर तो नहीं दिखा सकती पर आप विश्वास रखें आपके लिए मेरी धड़कनों में अपार प्रेम है। मैं

आपकी हो चुकी हूँ। पर अपने कर्मों की रक्षा करना मेरे लिए बाध्य है। इस समय आपके साथ संगम करूँगी तो संसार में बड़ी अकीर्ति फैल जाएगी और मैं बदनाम हो जाऊँगी। कुलकलकनी कहाऊँगी, आप विधिवत् विवाह कर लीजिए। मैं आपकी हो चुकी हूँ।

“प्रिये ! विवाह दो हृदयों के पवित्र बंधन को कहते हैं, अब हमारा हृदय एक-दूसरे को स्वीकार कर चुका है, भले ही संसार कुछ कहे हम पति-पत्नि हैं।”

“नहीं, नृप नहीं ! आप मेरा सर्वनाश न करे, पिताजी मुझे पापिन कहेंगे और जीवित नहीं छोड़ेंगे। कुन्ती ने कहा-

पाण्डू नृप पर तो काम भूत सवार हो चुका था, वह न माने। कहने लगे कुन्ती, यदि तुम इस बार मुझे निराश कर दोगी, तो मैं कहीं का न रहूँगा। मेरा हृदय टूट जाएगा। मैं तुझे विश्वास दिलाता हूँ कि तुझे ही अपनी अर्धाङ्गनी बनाऊँगा और तुम्हें दोष नहीं लगने दूँगा।

कुन्ती मैं आपके लिए प्राण दे सकती हूँ परन्तु मुझे कौमार्य धर्म को उल्लंघन करने पर विवश न करे।

पाण्डू बात तो ठीक है, मैं भी तेरे कौमार्य को भंग नहीं होने देना चाहता तो एक रास्ता है, आप मुझ से गंधर्व विवाह कर ले, शीघ्र ही हम विवाह कर लेंगे।

कुन्ती पहले तो इंकार करती रही परन्तु कितने दिनों से जिसके लिए व्याकुल थी उसे निराश न कर पाई। दोनों ने गंधर्व विवाह कर लिया और पति-पत्नि के रूप में प्रेमोत्तरेक आत्मविभोर हो कर रतिक्रिया में मस्त हो गये।

कुन्ती अब मैं आप को विदा करूं तो कैसे, मेरा दिल तड़पता रहेगा। जो प्रसाद आपने मुझे दिया है, उसके लिए मुझे दुनियां कि कितनी बातें सुननी पड़ेंगी।

पाण्डू ने अपनी मुद्रिका उतार कर देते हुए कहा- यह लो मेरी निशानी जब कोई आप से प्रश्न करे तो कह देना हमारा गंधर्व विवाह हो चुका है। मैं शीघ्र ही चिन्तामुक्त करने का प्रयास करूंगा और हस्तिनापुर को चल दिए।

कर्ण का जन्म

पाण्डू के सहवास से कुन्ती को गर्भ धारण कर लिया। अपने महल में यादों में खोई रहने लगी और कुछ लक्षण भी प्रकट होने लगे, एक दिन धाय माता ने कुन्ती से पूछ लिया, तुम ने किस पुरुष से कौमार्य भंग करवाया है। पहले तो कुन्ती बात छुपाने का प्रयास करती रही, फिर वह समझ गई की धाय माता को पाण्डू मिलन का पता चल चुका है, कुन्ती लड़खड़ाती हुई बोली- “माता! वास्तविकता यह है कि काम वासना बड़े-बड़े घोर अनर्थ कर देता है। कामाधीन हुआ जीवन दुष्यकृत्यों को करने से भयभीत नहीं होता। इसी के वशीभूत होकर बड़े-बड़े त्यागियों से भी ऐसे काम हो जाते हैं, जिसे कभी स्वप्नों में भी कल्पना नहीं की जा सकती। ऐसी ही भूल मुझ से भी हुई है।”

बेटी ऐसी भूल को छुपाना असंभव होता है, यह तो स्वयं रहस्योद्घाटन कर डालती है। मुझे यह बताओ वह पुरुष कौन है? जिसके चक्कर में तुम आ गई। उसके हृदय में सहानुभूति विद्यमान थी।

“ माता ! आप को ज्ञात है कि हस्तिनापुर नरेश पाण्डू मेरे हृदय मे बस चुका है और मैं उसे अपना पति स्वीकार कर चुकी हूँ। वे भी मुझे हृदय से चाहते हैं, वे मुझ पर आसक्त है, भाग्यवश उनके पास एक अंगूठी है, जिस के सहारे वे कहीं भी जा सकते हैं और अनायस ही छुप कर मुझे मिलने आ गये। मेरे बहुत इन्कार करने पर भी उन्होंने मेरे साथ यह दुष्कर्म किया।” कुन्ती की बात में लज्जा और खेद स्पष्टतया झलक रहा था।

धौंयमाता उपदेश देने लगी, कौन मानेगा कि यह बलत्कार है या गंधर्व विवाह है, लोग तो इसे पाप एवं दुष्कर्म ही मानेंगे। जब महाराज सुनेंगें तो मेरी और तेरी क्या दुर्दशा होगी। कुन्ती घबरा गई और कहने लगी माता मेरी भूल मुझे क्षमा करो, मुझे पवित्र बनाओ। कोई मार्ग निकालो नहीं तो लोक लज्जा से मैं अपने प्राण त्याग दूँगी।

अब रूदन करने से क्या लाभ, जो होना था हो गया। धैर्य रख, गर्भ बढ़ता गया चेहरा पीला पड़ता गया। सुस्ती छा गई, चंचलता समाप्त हो गई। पेट कुम्भ हो गया, कुछ कुम्भ उन्नत एवं स्वर्ण की काँति सरीखे हो गये। एक दिन कुन्ती के माता-पिता ने देख लिया और वे भाँप गये।

धौंय माता को बुलाया गया और खूब डाँटडपट हुई। अंधकवृष्णि चीख उठी, कुन्ती की माता भी भभक उठी। पापिन अब बोल तू क्या कहना चाहती है।

“ हे नरेश! धौंय ने करबद्ध कहा, इसमें न तो कुन्ती का कोई दोष है और न मेरा ही। पूर्व कर्म का, पूर्व की भाँति कर्म नट की तरह नाचते हैं और जीव नाचता है। ” कौरव देश का

आतुल विभूति का स्वामी पाण्डू नामक एक शूरवीर नृप है, वह एक चित्र देखकर कुन्ती के रूप पर आसक्त हो गया। कुन्ती को प्रार्थना करने आया था।

वह कैसे यहाँ आ गया?

उसके पास एक अँगूठी है जहाँ वे एच्छिक हो वहाँ जा सकता है। एक दिन अँगूठी के सहारे वह उद्यान में पहुँच गया, वहीं कुन्ती थी। दोनों एक-दूसरे पर आसक्त हो गये। बिना विचार किये दोनों ने गन्धर्व विवाह कर लिया। यह सब कुछ हो गया जो आप देख रहे हो। इसके प्रमाण स्वरूप पाण्डू की अँगूठी कुन्ती के पास है।

जो हुआ अच्छा हुआ अब तो एक ही उपाय है कुन्ती का विवाह पाण्डू से कर दिया जाए।

अँधकवृष्णि ने ने हस्तिनापुर विवाह का सन्देश भेज दिया। गर्भ के दिन पूरे होने लगे। पाण्डू ने भी सारी बात भीष्म को बता दी, जो उन्होंने स्वीकार कर ली। परन्तु इस स्थिति में विवाह होना अच्छी बात नहीं। उधर तैयारियाँ होने लगी कि नौ मास पूर्ण होने पर कुन्ती ने पुत्र रत्न को जन्म दिया। गुप्त रूप से सभी कार्य किये गये। कानों-कान किसी को भी मालूम नहीं होने दिया। बालक का नाम कर्ण रख दिया गया और कानों में कुण्डल एव आभूषण, रत्न कवच पहनाकर स्वर्ण मुद्रों के साथ एक सन्दूक में रख दिया गया और नदी में बहा दिया जिसे आगे एक रथवान ने निकाल कर उसका पालन-पोषण किया। वैष्णव संस्कृति कर्म को कानों से उत्पन्न मानती है, जो माननीय नहीं हो सकती।

धूमधाम से कुन्ती का विवाह पाण्डू के साथ हुआ, पाण्डू कुन्ती को लेकर नगर प्रवेश कर रहे थे कि देखने के लिए भीड़ उमड़ पड़ी। कुछ दिनों के बाद पाण्डू का विवाह माद्री से भी हुआ, माद्री कुन्ती की छोटी बहन थी।

कर्ण का ललान-पालन इस ढंग से हुआ कि वह पूर्ण युवराज हो गया। कर्ण अपने पूर्वभव में महान तपस्वी था। कर्ण अति दानवीर था। कर्ण ने गुरु द्रोणाचार्य से कौरवों और पांडवों के साथ ही सब प्रकार की शिक्षा, युद्ध कौशल में प्रवीण हो गये। पाण्डू कर्ण को सूत पुत्र के नाम से पुकारते थे जिससे कर्ण दुःखी होता था और अर्जुन से विशेष द्वेष रखता था। अर्जुन और कर्ण दोनों ही धनुष विद्या के निष्णात धुरन्धर थे।

जब समस्त युवराज (कौरव और पाण्डवों) की शिक्षा पूर्ण हुई तो गुरु द्रोणाचार्य ने भीष्म पितामह से कहा अब इन सब को कौशल की परीक्षा होनी चाहिए। एक मंडप सजाया गया, जहाँ समस्त राज परिवार के बैठने की व्यवस्था के साथ, सामन्त और नागरिकों को देखने का अवसर मिला।

सब ने अपने अपने कौशल का प्रदर्शन किया, सब देखकर हर्षित हो रहे थे। कौरव जले-भूने बैठे थे कि पांडवों कि वाह-वाह हो रही थी। अर्जुन गुरुदेव, पितामह आदि को प्रणाम कर के अपने स्थान पर आ गया। तब एक भयंकर ध्वनि हुई कि सब दर्शक समुदाय में खलबली मच गई। कि मैदान में कर्ण आ गया, वह कवच-कुण्डल पहने हुए था, उसके ललाट पर तेज विद्यमान था, शरीर पर वीरता झलक रही थी। दर्शकों में

उत्सुकता जाग उठी कि यह कौन है ? यह वीर कौन हो सकता है ? कहाँ से आया है ?

गुरु द्रोणाचार्य बोले, यह भी मेर शिष्य कर्ण है।

दुर्योधन- अर्जुन कितना ही कुशल धनुषधारी और कौशल पूर्ण सही, परन्तु उस से भी बढ कर योद्धा व कलाकार विद्यमान हैं। शुभ कामनाओं मात्र से ही नहीं अब इन दोनों को कसौटी पर चढना ही सच्ची परीक्षा होगी।

कर्ण समझ गया कि दुर्योधन मेरा हितैषी है और मेरा हर प्रकार का सहयोग देने वाला है। कर्ण अभिमान के मद से भर गया और कहने लगा- यहां उपस्थित किसी व्यक्ति को भ्रम है कि वह मेरा मुकाबला कर सकता है, तो मैं सामने खड़ा हूँ। यदि अर्जुन वीर है तो मैं सामने खड़ा हूँ यदि वह शस्त्र रख कर मल्ल युद्ध करना चाहे तो भी मैं तैयार हूँ। अर्जुन गुरु के आदेश की प्रतीक्षा कर रहा था। परन्तु चुनौती से उसे रहा नहीं गया, शस्त्र रख कर कर्ण के सामने आ गया। चारों ओर भय का साम्राज्य छा गया। दुर्योधन प्रसन्न मन ही मन कर्ण की सफलता की कामना करने लगा।

जब कुन्ती ने देखा कानों में कुण्डल तो उसे शंका हो गई कि यह भी मेरा पुत्र कर्ण ही है, दोनों का मल्ल युद्ध तो मेरे लिए ही घातक होगा चाहे किसी कि विजय-पराजय हो। फिर निराश होकर अपने को और पाण्डू को दोष देने लगी। यह सब लौकिक व्यवहार के प्रतिकूल कार्य करने के कारण ही तो हो रहा है।

कृपाचार्य यह सब देखकर सिहर उठे। कहीं कोई अनर्थ न हो जाए। विचार कर तुरन्त रोकने का प्रयास किया जाए कि वह उठ कर मैदान में दोनों के बीच खड़े हो गये। आप सब लोग कोलाहल कर रहे हैं, परन्तु सूर्य को भी देखते हो। चारों ओर से अवाजें आनी लगी, सुनो सुनो आचार्य जी की बात। गुरु द्रोणाचार्य भी ध्यान से सुन रहे थे और कहने लगे हम प्रत्येक काम सूर्य की साक्षी से करते हैं, सूर्य कि साक्षी के बिना युद्ध नहीं हो सकता। वह देखो सूर्य अस्त हो रहा है कि सब कि निगाहें सूर्य पर चली गई। दोनों को शाँत कर अपने-अपने स्थान भेज दिया और एक बड़ी अनहोनी टल गई।

सती कुन्ती के शोक से, सूर्य भी गया डूब।

दुर्योधन की चाह पर, शोक हो रहा खूब।।

दुर्योधन बहुत दुःखी हुआ, अब वह कर्ण पर डोरे डालने लगा और कुछ भूमि देकर उसको राजा घोषित कर दिया। कर्ण ने भी दुर्योधन को हर दुविधा में साथ देने का वचन दिया। दुर्योधन के माया जाल, पाण्डवों को जूआ में हराने के समय भी कर्ण कौरवों के साथ था। जब पाण्डव बनवास की सब शर्तें पूर्ण कर प्रकट हुए, तो अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए प्रयास किया तो दुर्योधन ने साफ इन्कार कर दिया। श्री कृष्ण ने दुर्योधन को बहुत समझाने की कोशिश की , यहां तक कि केवल पाँच गांव ही पाण्डवों को दे दे अन्यथा बहुत भंयकर विनाश हो जाएगा। पाण्डवों के पास धर्म है और बलशाली है। क्रोध में बबूला दुर्योधन ने कृष्ण को भी चुनौती दे दी, पाण्डव तो क्या तुम भी अपनी शक्ति अजमा लेना। सब राख हो जाएंगे।

श्री कृष्ण ने कर्ण को भी समझाने का प्रयास किया और कहा- मुझे कुन्ती ने बताया कि तुम भी पाण्डु के ही पुत्र हो और पांडवों के बड़े भाई भी हो। कर्ण ने कहा- मे कौरवों को वचन दे चुका हूँ और वे मेरा हित करते हैं जबकि पांडव मुझे सूत-पुत्र के नाम से पूकारते हैं। मैं कौरवों के साथ ही रहूँगा।

कुन्ती ने भी कर्ण को समझाने का प्रयास किया और कहा कि तुम भी मेरे ही पुत्र हो बलशाली हो, दानी हो, मैं अपने पांचो पुत्रों के लिए तुम्हारे से प्रार्थना करती हूँ। कर्ण- मैं आपको वचन देता हूँ कि अर्जुन को छोड़ अन्य किसी पर वार नहीं करूँगा। अर्जुन से भिड़ने पर एक तो जीवित रहेगा चाहे मैं मरूँ या अर्जुन आपके पाँचो पुत्र सकुशल रहेंगे।

युद्ध के मैदान से-

द्रोण के मारे जाने से दुर्योधन को बहुत दुःख हुआ। भीष्म गए, जयद्रथ गया, और दुर्योधन के कितने ही भाई भी काल का ग्रास बन गये। दुर्योधन की चारों ओर पराजय मानो यमराज पीछा नहीं छोड़ रहा। कर्ण से अपने मन की व्यथा सुनाई। कर्ण ने उस पूरा धैर्य बंधाते हुए कहा- साहस से काम लो। मैं अपने प्राण देकर भी तुम्हारी रक्षा करूँगा। मेरे आगे पांडव क्या है जो ठहर सके। तुम्हारी सेना की व्यवस्था मैं करूँगा और विजयी बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ूँगा। दुर्योधन ने सुख की साँस ली। बस तुम किसी प्रकार अर्जुन को मार दो, तो बात बन जाएगी। कौरव कर्ण की जय जयकार करने लगे।

कर्ण का अन्त

पांडवो ने कर्ण के साथ युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए, श्रेष्ठ महूर्त देख लिया। नियत समय अर्जुन का रथ आक्रमण के लिए

चल पड़ा। पीछे भीम का रथ अर्जुन की सहायता के लिए चल रहा था। अर्जुन ने जाते ही ठीक समय पर कर्ण पर आक्रमण कर दिया। भीम भी अर्जुन की सहायता के लिए धनुष सम्भाले वहीं रहा और कभी-कभी कर्ण पर वार कर देता था। यह देख दुःशासन को बड़ा क्रोध आया और आवेश में आकर बोला-दुष्ट भीम बड़े महाबली कहलाते हो, साहस है तो मेरे सामने आ। भीम को अपनी प्रतीज्ञा पूर्ण करने का अवसर मिल गया।

भीमसेन क्रुद्ध होकर बोला- “अरे मूर्ख दुःशासन! बस अब तू अपने से गया ही समझ। जो अत्याचार तूने किये थे उनका बदला अभी हो जाएगा और मैं अपनी प्रतीज्ञा पूर्ण करूँगा। याद रख मैं भीम हूँ। क्षमा करना नहीं जानता।” कहते कहते कबूतर कि तरह दुःशासन पर झपट पड़ा। दुःशासन ने बाण चढ़ाया भीम पर वार करने के लिए कि भीम ने बीच में ही उसका धनुष काट दिया। छलांग मार कर उसको दबोच लिया। अपनी भुजाओ में कस कर उसकी हड्डी-पसलियाँ तोड़ने लगा। घूसों से मार-मार कर अदमरा कर दिया और कहने लगा बुला कौन तेरी सहायता में आता है। दुःशासन के प्राण-पखेरू उड़ गये। कर्ण भी काँप गया। कर्ण की दशा देखकर शल्य ने कहा- कर्ण तुम जैसे वीर को साहस त्यागना शोभा नहीं देता। उधर दुर्योधन- दुःशासन की मृत्यु से भयभीत हो गया। अर्जुन अब तेरा वध करने पर तत्पर है और बाण वर्षा कर रहा है।

कर्ण और अर्जुन का भीषण संग्राम छिड़ गया। दोनों की टक्कर के महरथी थे। कर्ण ने एक ऐसा बाण चलाया जो काले नाग की भाँति विष की आग बरसाता हुआ अर्जुन की ओर

आया, अर्जुन के महारथी ने अपना रथ नीचे कर लिया और बाण अर्जुन के मुकट को गिरा कर निकल गया। यदि कृष्ण ऐसा न करते तो अर्जुन के लिए घातक सिद्ध होता। अर्जुन को क्रोध आ गया और तीव्र गति से बाण वर्षा कर दी जिससे कर्ण का रथ कीचड़ में धंस गया। कर्ण घबरा गया और कहने लगा अर्जुन मेरा रथ का पहिया कीचड़ में फंस गया है जरा रूक मैं पहिया निकाल लूं। तुम तो धर्म युद्ध के धनी हो। युद्ध धर्म निभा कर तुमने यश कमाया है। तनिक बाण वर्षा बन्द कर दो। श्री कृष्ण ने चिढ़कर कहा-“ अरे वाह रे! धर्म के ठेकेदार जब अपनी जान पर बन आई तो धर्म याद आया। जब द्रौपदी को अपमानित कर रहे थे तो तुम्हें धर्म याद नहीं था? दुधमुए बालक अभिमन्यु को तुम सात महारथीयों ने घेर कर मारा, तब तुम्हें धर्म याद नहीं था।”

कृष्ण की झिड़की सुन कर्ण को कुछ नहीं सूझा। अपने अटके रथ से ही वार करने लगा। एक बाण ऐसा मारा कि अर्जुन की छाती में लगा, जिससे अर्जुन कुछ देर के लिए विचलित हो गया। कर्ण झट से निकल कर पहिया निकालने लगा, भरसक प्रयास करने पर भी निकल नहीं सका। सुन्दर अवसर देखकर अर्जुन ने जोरदार बाण वर्षा से आक्रमण कर दिया। कर्ण ने परशुराम से प्राप्त शिक्षा का प्रयोग करना चाहा कि समय पर वे भूल गया और अर्जुन के बाण ने उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। सारे कौरव युद्ध में मारे गये वीरों में केवल कर्ण ही देव विमान में उत्पन्न हुआ, शेष सब नरकगामी हुए। कर्ण उस देव विमान में आयु पूर्ण कर आने वाली चौबीसी

में जैन तीर्थंकर पद प्राप्त करेगा, चौबीसी के बीसवें तीर्थंकर श्री विजय जी होंगे।

श्री कृष्ण वासुदेव

श्री कृष्ण जी का उल्लेख भारत में जैन संस्कृति और वैदिक संस्कृति में सम्मानपूर्वक वर्णन मिलता है। दोनों संस्कृतियों में समानता होने पर भी भिन्नता अधिक है। जैन संस्कृति

आत्मार्थी है जबकि वैदिक संस्कृति ईश्वरवादी होकर महापुरुषों को अवतार मानती है जो विष्णु जी के रूप हैं। दोनों संस्कृतियों के ऋषि-मुनि, सन्यासी अहिंसा पर आधारित कार्य करते थे। वैदिक संस्कृति में यज्ञ का महत्व अधिक था और वह भी सात्विक। प्रचीन काल में ऋषि, महर्षि, राजा एवं सम्राट त्रैवार्षिक यव (अज), घृत एवं वन्य औषधियों से यज्ञ करते थे। उस समय यज्ञों में पशु बली हिंसा का कोई स्थान नहीं था। यज्ञों में किसी प्रकार की हिंसा को घोरतिघोर पाप पूर्ण, गर्हित एवं निन्दनीय दुष्कृत्य समझा जाता था। यह महाभारत में उल्लिखित तुलाधार उपाख्यान, विचखनु-उपाख्यान से स्पष्ट सिद्ध होता है। यह महाभारत ,शान्ति पर्व के अध्याय 262,263 में वर्णित है। कुछ काल के बाद कुछ महत्वकांक्षियों ने शब्द अज के दो अर्थ होने के कारण अनर्थ कर दिया। अज शब्द का अर्थ होता है अन्न जो तीन वर्ष पुराना हो और उसमें उत्पत्ति होने की शक्ति नष्ट हो चुकी हो और दूसरा अर्थ है बकरा, जब सब अनुष्ठान धर्म के लिए हो रहें हो तो बकरे का क्या काम। एक बार देवऋषि नारद जी का भी महर्षियों के साथ संवाद हुआ तो उन्होंने भी धर्म के कार्य में बकरे शब्द को अनुचित ठहराया। परन्तु कुछ हिंसा प्रेमियों ने इसका उल्लेख वेदों में भी कर दिया, जिससे यज्ञों में पशु बली देना आरम्भ हो गया। श्री कृष्ण पूर्णतः अहिंसा के पक्षधर थे क्योंकि वे जैनधर्म के 22 तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमी के चचेरे भाई थे।

श्री कृष्ण का जन्म तो वैसे पूर्व कंस इतिहास में वर्णित हो चुका है, क्यों कि कंस की बहन थी देवकी और देवकी का सातवां गर्भ था श्री कृष्ण, जिसे कंस ने कृष्ण के जन्म से पूर्व ही उसको खत्म करने के अनेकों प्रयास किये परन्तु सृष्टि की रचना पाप के अन्त करने महाबली धरती पर जन्म लेते ही हैं, उनको कोई रोक नहीं सकता।

जैसे ही कारागर में कृष्ण का जन्म हुआ, सब पहरेदार गहरी निद्रा में चले गये, घोर अन्धेरी रात में भी वसुदेव को प्रकाशमय रास्ता मिला, उफनती यमुना ने भी अपने को सिकोड़कर रास्ता प्रदान किया, जिससे वसुदेव नवजात शिशु को लेकर गोकुल नन्द के घर पहुँच गये और यशोदा ने उसी समय जन्म दिया बालिका को वसुदेव को दे दिया और वे लेकर कारागर में आ गये। कंस की दासियां जागृत हुई और सद्यः जाता उस बालिका को लेकर कंस की सेवा में उपस्थित हुई। कंस भी अपना भय टला समझ कर प्रसन्न हुआ। कंस आज मैं भविष्य वाणियो को धूल में मिला दूँगा। आज मैं अपने नाश का नाश कर डालूँगा।

कंस की आँखों में आग बरस रही थी। जिस समय कन्या उसके सामने लाई गई, उसने उलट-पलट कर देखा और एक भयंकर अट्टहास किया। इतना भयंकर कि पास खड़े लोग भी भयभीत हो गये। कंस ने कन्या के बाल पकड़ लिए और कहा- हा, हा, हा, हा यही है जिसके कारण मेरी मृत्यु होनी है, यह

मेरे भय से लड़के से लड़की बन गई। चाहूँ तो अभी यमलोक पहुँचा दूँ पर यह तो रो रही है, इस रोने वाली छोकरी से मैं क्या डरूँ। यह मेरा क्या बिगाड़ सकती है। विचार करने लगा यदि मैं कन्या को मारता हूँ तो लोग मुझे भीरू कहेंगे, कि कन्या से भयभीत हो गया। ले जाओ और देवकी को दे दो।

कंस को जो भय था कि देवकी कि सन्तान के हाथों उसकी मृत्यु होगी, अतः वह नहीं चाहता था कि देवकी की कोई सन्तान जीनित रहे, परन्तु विधि का विधान को कोई रोक नहीं सकता, कंस की मृत्यु गोकुल में हठखेलियों के साथ बड़ा हो रहा था। कंस विश्वस्त अब मुझे मृत्यु का भय नहीं कि एक ज्योतिषी ने भविष्यवाणी कर दी कि तुम्हारा काल नजदीक ही पल रहा है। कंस चिन्तित ने अनेकों प्रयास किये और मायवि गोकुल भेजे कि बालक कृष्ण और बलराम उन मायवियों को ही मार डालते थे। देवकी गौपूजा करने लगी और इस बहाने वह गोकुल आती कृष्ण को प्यार-दूलार देकर प्रसन्न हो चली जाती, तब से गौ पूजा अरम्भ हुई।

बालक कृष्ण मिट्टी खाने का आदि हो गया, यशोदा झट उसका मुँह साफ कर मुँह में माखन डाल देती है। कृष्ण अपनी नटखट हरकतों से यशोदा माँ को खूब सताता था एक दिन यशोदा ने कृष्ण को रस्सी से बाँधने का विचार किया, रस्सी छोटी पड़ गई, उस रस्सी के साथ एक और रसी को गाँठ लगाई पर फिर वह छोटी पड़ गई, कृष्ण अपनी लीला दिखता

रहा रस्सी छोटी होती गई। जब यशोदा इधर-उधर होती, हाँडी से माखन कुछ खाता, कुछ मुँह को लगा लेता कुछ इधर-उधर खंडेल देता।

बालक कृष्ण ज्यों ही बड़ा हुआ गौ वंश से प्रेम करने लगे। वे गौ की गर्दन से चिपक जाते, बच्छड़ो से क्रीड़ा करते और स्वयं चराने के लिए जंगल ले जाता, वहाँ सभी ग्वाले इकत्रित हो जाते, कृष्ण उन सब का सरताज बन गया। एक दिन कृष्ण खेल रहे थे कि शकूल और पूतना असूरी आई, उन्होंने ने यशोदा का रूप धारण कर अपने स्तनों पर ज़हर लगा कर स्तनपान करवाने लगी, विष कृष्ण का कुछ न बिगाड़ सका बल्कि कृष्ण ने स्तनपान करते समय उनके प्राण ही खींच लिए और उन्हें ढेर कर दिया।

बालकावस्था में बच्चों के साथ गेंद से खेल रहे थे कि गेंद नदी में गिर गया, वहाँ जल में शेषनाग रहता था। निडर जल में उतर गया गेंद निकालने के लिए। शेषनाग डसने को आया कि कृष्ण ने उसे नथ लिया। उस की शैया बना कर उस पर खड़े हो गये। बालक और वहाँ की जनता देखकर आश्चर्यमय हो गई और कृष्ण खेलते हुए प्रसन्न मुद्रा में बाहर आए।

कृष्ण को बाँसूरी का बहुत शौक था। इतना माधुर्य था कि उसकी तान से सभी नर-नारी असक्त हो जाते थे। उनकी गाय भी उसकी तान को पहचानने लग गई। जब कृष्ण बाँसूरी की धुन बजाते तो गाय दौड़ी चली आती। ग्वाले उनके संगी साथी

बन गये। ग्वाल कन्याएं भी आकर्षित हो गई। कृष्ण कभी उन की मटकियों से माखन चुरा कर खाते, कभी उन से व्यंग और हास्य वाणी से चिढ़ाते परन्तु वे रुष्ट नहीं होती थी।

शाङ्ग का धनुष्य प्रकरण

कंस के राजभवन में शाङ्ग नामक एक अति प्रचीन धनुष था। उसने घोषणा करवा दी कि जो कोई इस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा देगा उसके साथ वह सत्यभामा का विवाह करवा देगा। इस कहने पर कंस एक बार फिर पुनः निश्चित कर लेना चाहता था कि श्री कृष्ण ही उसके शत्रु हैं। यथा समय अयोजन किया गया। अनेक राजा-राजकुमार अपनी शक्ति का परिचय देने को एकत्रित हुए। श्री कृष्ण भी बलराम और अनाधृष्टि के साथ स्वयंबर सभा में पहुँचे।

अनाधृष्टि वसुदेव- मदनरेखा का पुत्र था जो शौर्यपुर से मथुरा यात्रा में रात्रि विश्राम हेतु गोकुल रूक गया था। मार्ग से अपराचित होने के कारण अगले दिन श्री कृष्ण बलराम को साथ लेकर उसने मथुरा प्रस्थान किया। मार्ग अप्रशस्त था और उसका रथ बार-बार अटक जाता था। जब एक भारी पेड़ की बाधाओं से रथ रूक गया तो अनाधृष्टि ने उसे उखाड़ फेंकना चाहा पर पसीना-पसीना होकर भी वह समझ नहीं सका। श्री कृष्ण ने बड़ी सुगमता से समूल उखाड़ कर रास्ता बना दिया। अनाधृष्टि श्री कृष्ण की शक्ति पर आश्चर्य करने लगा और उनका प्रशंसक बन गया। स्वयंबर सभा में जब ये पहुँचे तो संयोग

ऐसा हुआ कि अनाधृष्टि का मुकट छाती पर गिर कर खण्डित हो गया। उसका पैर फिसला था। उपस्थित राजा-महाराजा अट्टहास कर उठे और सत्यभामा भी व्यंग्य मुस्कराने लगी। आत्मविश्वास डिग जाने के कारण अनाधृष्टि प्रत्यंचा न चढ़ा सका। पराजय की इस स्थिति से श्री कृष्ण तड़प उठे। उन्होंने ने क्षणमात्र में शार्ङ्ग को प्रत्यंचा युक्त कर दिया। सभा-स्थल हर्षध्वनि से गूँज उठा.....पर वसुदेव इस अशंका से चिंतित हो उठे कि इस पराक्रम से कंस श्री कृष्ण को अपना शत्रु रूप में पहचान लिया तो नया संकट उठ खड़ा होगा। उनके निर्देश पर श्री कृष्ण और अनाधृष्ट तत्काल सभा स्थल त्याग कर गोकुल पहुँच गये। लोक में नन्द-नन्दन श्री कृष्ण शार्ङ्गधर के रूप में विख्यात हो गये।

एकबार दो व्यापारी कुछ कीमती हीरे जवाहरात लेकर जीवयशा के महल के पास पहुँचे, जीवयशा ने पूछा यह क्या बेच रहे हैं, दा,यो ने कहा- हीरे जवाहरात, जीवयशा ने उन व्यापारियों को बुलाया, हीरे जवाहरात देखे और उनका मुल्यांकन किया, व्यापारियों ने कहा- इससे अधिक तो हमें मिल रहा था। जीवयशा कहाँ- कृष्ण की नगरी मथुरा में। यह सुनकर जीवयशा छटपटा उठी, अभी भी मेरे पति का हत्यारा जीवित है, जीवयशा ने बाल बिखेर लिए और रोती-चिल्लाती जरासंध के पास पहुँच गई । जरासंध ने ढांडस बंधाते हुए पूछा- बेटा क्या बात है, पिता जी आप तीन खण्ड के मालिक

और मेरे पति का हत्यारा अभी भी जीवित, यह कैसा आप का पराक्रम है। जरासंध भी उत्तेजित हो गया, अपने सभी सेनापतियों सामन्तों और पुत्रों को बुलाया कोई है जो कृष्ण को जीवित मेरे पास ले आए। जरासंध ने जीवयशा को महल में भेज दिया और सोम भूप को बुलवाकर दूत के रूप में समुद्रविजय के पास भेजा।

जरासंध का दूत सोम भूप शौरीपुर में समुद्रविजय का दरबार लगा था कि पहुँच कर जरासंध का सन्देश दिया कि कंस के हत्यारे कृष्ण-बलराम को मुझे सौंप दें, मैं आपके पास जरासंध के दूत के रूप में उपस्थित हुआ हूँ, जिससे उनको चित दण्ड दिया जाए।

समुद्रविजय को कुछ क्रोध आया, पर वह क्रोध को पी गये और गम्भीरता पूर्वक कहा- मैं आपका सन्देश सुनना नहीं चाहता और जरासंध को कह दो, कंस का वध न्यायपूर्वक हुआ है। दुष्ट को दंड देना हमारा सब का कर्तव्य है। यह दण्ड तो जरासंध को देना चाहिए था उसने अपना कर्तव्य नहीं निभाया तो कुमारों ने इस कार्य को किया, कुमार बधाई के पात्र है। अन्याय पूर्ण बात का हम साथ नहीं दे सकते। सोम भूप, मैं उनका दूत हूँ और उनके अधीन हूँ, देखिए आप उनके मित्र है।

“ आप दूत है मेरे परामर्श दाता नहीं।” आवेश में कर समुद्रविजय बोले।

सोमभूप ने धमकी भरे लहजे में कहा- अपने प्राणों की खैर मनाए। इतने में कृष्ण सोमभूप की बातें सुन रहा था, वह नहीं चाहता था कि सोम भूप और समुद्रविजय के वार्तालाप में बोले परन्तु कृष्ण से रहा नहीं गया और अपनी खड्ग लेकर सोमभूप की ओर दौड़ा। सोम भूप ने दौड़ कर अपनी जान बचाई और जरासंध को सारा वृत्तान्त सुना दिया। जरासंध अच्छा हुआ आप बच कर आ गये। जरासंध ने अपने दरबार में घोषणा कर दी कोई है जो कृष्ण-बलराम को पकड़ कर ले आए। सेनापति काली कुमार उठा इस काम को मैं पूरा कर दूँगा। भारी भरकम सेना लेकर यादव कुमारों को मारने एवं पकड़ने के लिए प्रस्थान कर दिया और जरासंध को आश्वस्त कर कहा- यदि यादव अग्नि में भी कूद जाए तो मैं वहां से भी निकाल कर ले आऊँगा।

उधर समुद्रविजय ने सभी यादव कुमारों को निकाल कर कहीं समुद्र की ओर भेज दिया। जब काली कुमार अपनी सेना लेकर आ रहा था कि देव माया से वहां अनेको चिताएं जल रहीं थी और उनके पास एक स्त्री विलाप कर रही थी। काली कुमार अपने रथ से उतरा और पूछने लगा आप क्यों रो रही हो, स्त्री प्रभु ने न जाने क्या अनर्थ कर दिया कि सभी यादवों कि चिताएं जल रहीं है वह जो बड़ी चिताये हैं वे कृष्ण-बलराम की हैं। काली कुमार अच्छा हुआ वे अपने आप ही समाप्त हो गये, परन्तु दिखाने के लिए कुछ तो लेकर जाऊँ,

कृष्ण-बलराम की चिताओं के पास पहुंचा कि देवताओं ने धक्का देकर काली कुमार को भस्म कर दिया। जरासंध को सुनकर बहुत आघात लगा।

द्वारिका नगरी का निर्माण

सेना की लौट जाने की सूचना मिली तो वे प्रसन्नतापूर्वक समुद्रतट की ओर बढ़ने लगे। उन्होंने सौराष्ट्र प्रदेश में रैवत पर्वत के पास अपना डेरा डाल लिया।

वहां सत्यभामा ने भानु और भामर नाम के दो युगल पुत्रों को जन्म दिया एवं श्री कृष्ण ने दो दिन का उपवास रख कर लवण समुद्र के अधिष्ठाता सुस्थित देव का एकाग्रचित होकर ध्यान किया। तृतीय रात्रि में देव प्रकट हुए श्री कृष्ण को पांचजन्य शंख, बलराम को सुघोष नामक शंख एवं दिव्य रत्न और वस्त्रादि भेंट किये और श्री कृष्ण से पूछा कि आप ने किस लिए मुझे याद किया है।

श्री कृष्ण ने कहा-“ पहले के अद्धर्चक्रियों की द्वारिका नगरी को अपने अंक में छिपा लिया है, अब कृपा कर वह मुझे वापिस दीजिए।”

देव ने तत्काल उस स्थल को अपनी जलराशि को हटा लिया। शुक्र की आज्ञा से वैश्रवण ने उस स्थल पर 12 योजन लम्बी और 9 योजन चौड़ी द्वारिकापुरी का एक अहोरात्रि में निर्माण कर दिया। अपार धनराशि से भरे मणिखचित्त भव्य

प्रसादों, सुन्दर वापी-कूप-तडागों, रमणीय उद्यानों वाली विस्तीर्ण राजपथों और अनेक गौपुरों वाली द्वारिका में यादवों ने शुभ मूर्त में प्रवेश किया। वहाँ महान समृद्धियों का उपभोग करने लगे।

द्वारिका की स्थिति

द्वारिका के पूर्व में शालराज रैवत, दक्षिण में माल्यवान पर्वत, पश्चिम में सौमनस पर्वत, और उत्तर में गन्धमादन पर्वत था। इस तरह चारों ओर से उत्तुंग एवं दुर्गम शैलाधिराओं से घिरी हुई वह द्वारिकापुरी प्रबल से प्रबल शत्रुओं के लिए भी जेय और दुर्बेद्य थी।

उस समय की राजनीति

बलराम, कृष्ण, भोजराज उग्रसेन, मन्त्रिपरिषद और अन्य प्रमुख यादव राजकुमार मन्त्रणा भवन में एकत्रित हुए। गुप्त मन्त्रणा प्रारम्भ हुई। समुद्र विजय ने प्रश्न रखा कि इस प्रकार की स्थिति में शत्रु के साथ कैसा व्यवहार होना चाहिए।

भोजराज उग्रसेन ने कहा-“महाराज ! राजनीति विशारदों ने साम, भेद, दण्ड और उपप्रदान (दाम) ये चारों नीतियाँ बताई हैं। जरासंध के साथ अब सहानुनूति व्यवहारिक नहीं, क्योंकि वे हमारी मृदु भाषा पर भी काले नाग की तरह फुत्कार रहा है। ”

“ दूसरी जो भेद नीति है उसका भी जरासन्ध पर उपयोग करना व्यर्थ है। सभी मगधेश अति दान-मानादि से ऋण-उऋण होने से प्राण तक न्योछावर करने में अपना अहोभाग्य समझते हैं।”

“ तीसरा उपप्रदान नीति का तो जरासन्ध पर प्रयोग करना नितान्त असाध्य है।”

“ अतः चौथी दण्ड नीति ही हमारे लिए उपदेय और श्रयस्कर है।” इसके अतिरिक्त है आत्मसमर्पण अपने स्थान को छोड़ कर कहीं अन्य पलायन करना। परन्तु यह हीन आचरण करना आत्म समान के घातक है। दण्ड नीति ही उपयुक्त है।

“अतः अभिमानी जरासन्ध के गर्व को चूर-चूर करने के लिए हमें दण्ड नीति ही अपनानी चाहिए, हमें युद्ध की तैयारियाँ करनी चाहिए।”

दोनों ओर युद्ध की तैयारियाँ

जय जयकार करते हुए, शंख ध्वनि और रणभेरी के नाद से समस्त गगनमण्डल गूँज उठा। मित्र राजाओं को तत्काल सूचना भेज कर निमन्त्रण दिया गया. योद्धा साज सजने लगे। शुभ मूर्त में चातुरंगिणी सेना ने रणक्षेत्र की ओर प्रलयकालीन आँधी की तरह प्रयाण किया। आषाढ की घनघोर मेघघटा के

गर्जन तुल्य गगनमंडल को गूँजाते हुए रथों के पहिये, पदाति सेना की टापों से उड़ती हुई धूल ने सूर्य को ढक दिया। यादवों की सेना के साथ अनेको विद्यधरों की सेना आ मिली।

समुद्रविजय ने कृष्ण की सलाह से वसुदेव, शाम्ब और प्रद्यम्न को विद्याधरों के साथ रहकर वैताह्यगिरी के जरासंध समर्थक विद्याधर राजाओं के साथ युद्ध करने का आदेश दिया। उस समय भगवान अरिष्टनेमी ने अपनी भुजा पर जन्माभिषेक के समय देवताओं द्वारा बाँधी गयी अस्त्रों के प्रभाव को नष्ट करने वाली औषधि वसुदेव को प्रदान की।

आमत्य हंस ने जरासंध को सलाह दी कि वसुदेव पुत्र कृष्ण और बलराम दोनों ही अतिरथी हैं। महाकाल समान प्रबल पराक्रमी भीम और अर्जुन, बलराम, कृष्ण और शाम्ब एवं प्रद्युमन आदि अनगणित जेय योद्धा सेना में हैं। अकेले अरिष्टनेमी ही अपनी भुजबल से समस्त पृथ्वी को जीतने में समर्थ हैं।

हंस के मुख से कटु सत्य सुनकर जरासंध आग-बबूला हो गया। और तिरस्कृत करता हा बोला- “ दुष्ट ! तेरे मुख से शत्रु की प्रशंसा सुन कर ऐसा आभास होता है, कि इन मायावी यादवों ने तुझे भेद-नीति से अपना बना लिया है। मूर्ख ! तू शत्रु की सराहना करता है और मुझे डराने के लिए यह सब कुछ कह

रहा है। आज तक कभी श्रृंगालों से सिंह डरा है। ये ग्वाले तेरे देखते-देखते ही मेरी क्रोधाग्नि में जल कर भस्म हो जाएंगे।”

दोनों ओर से भयंकर युद्ध

तदन्तर दोनों सेनाओं ने व्यूह रचना आरम्भ की। जरासंध ने चक्रनाभि के चारों ओर नियत किए गये 11250 राजाओं के बीच त्रिखण्डाधिपति जरासंध भीषण युद्ध का संचालन करने के लिए मोर्चा सम्भाला।

दूसरी ओर से अतिरथी अरिष्टनेमी तथा महारथी महानेमी, सत्यनेमी, दृढनेमी, सुनेमी, विजयसेन, मेघ, महीजय, तेजसेन, जयसेन, जय और महाद्युति ये समुद्रविजय के पुत्र उनके दोनों पार्श्व में एवं अनेकों नृपति पच्चीस लाख रथी योद्धाओं के साथ उनकी सहायतार्थ सन्नद्ध थे।

स्वयं श्री कृष्ण ने शत्रु पर वत्भीषण प्रहार करने के लिए गरुड के समान अत्यन्त शक्तिशाली अभेद्य व्यूह की रचना की। इस तरह युद्ध भीषणतर होता गया। इस युद्ध में अर्जुन ने जयद्रथ और कर्ण को मार डाला। भीम ने दुर्योधन, दुःशासन आदि अनेक धृतराष्ट्र पुत्रों को मौत के घाट उतार दिया। अपने ही सामने सेनापतियों और परिवार जनो को जरासंध काल का ग्रास होते अत्यन्त क्रुद्ध होकर कृष्ण की ओर लपका और यादवों से कहने लगा- यादवों, क्यों वृथा ही मेरे हाथ से मरना

चाहते हो। अब भी कुछ नहीं बिगड़ा यदि प्राण चाहते हो तो ग्वाले बलराम और कृष्ण को मेरे हवाले कर दो।

यह सुनकर यादवों का खून खौल गया और तीव्र बाण वर्षा से जरासंध पर टूट पड़े। जरासंध ने अपने अट्टाइस पुत्रों के साथ बलराम पर आक्रमण कर दिया, अकेले बलराम ने अपने मूसल ही से अट्टाइस पुत्रों को अपनी ओर खींच कर पीस डाला। अपने पुत्रों का विनाश देखकर जरासंध अपनी गद्दा से बलराम पर प्रहार कर दिया जिससे बलराम मूर्च्छित हो गये, जरासंध बलराम पर दूसरा वार करते देख अर्जुन जरासन्ध को सामने आ खड़ा हुआ और युद्ध करने लगा। बलराम की दशा देखकर कृष्ण क्रुद्ध हो कर जरासंध के सन्मुख उसके 19 पुत्रों को मार डाला। यह देख जरासंध क्रोध से तिलमिला उठा। बलराम तो मर ही जाएगा, कृष्ण को मारना चाहिए। कृष्ण पर झपटा- “ओहो ! अब तो कृष्ण भी मारा गया, चारों ओर अवाजें आने लगी।” यह देख मताली ने अरिष्टनेमी से निवेदन किया,

” त्रिलोकीनाथ! यह जरासंध आपके सामने तुच्छ कीट है, कृपया अपनी लीला दिखाये।”

अरिष्टनेमी ने बिना किसी प्रकार की उत्तेजना के सहज भाव से पौरंदर शंख का घोष किया। उस शंखनाद से दसों दिशाएं, सारा नभोमण्डल और दुश्मन काँप उठे, यादव पुनः

युद्ध में जूझने लगे। इस तरह प्रभु ने स्वल्प समय में ही एक लाख शत्रु-योद्धाओं को नष्ट कर दिया। प्रति वासुदेव को केवल वासुदेव ही मार सकता है इस अटल नियम को अरिष्टनेमी ने अक्षुण्य बने रखा। बलराम भी सचेत हो गया और अपने मूसल से प्रहार करने लगा। समस्त रणक्षेत्र टूटे हुए रथों, मारे गये हाथी-घोड़े एवं कटे हुए नर-मुण्डों से दृष्टिगोचर होने लगा।

जरासंध ने अपने समस्त अस्त्र कृष्ण पर चला कर देख लिए परन्तु कोई भी सफल नहीं हो सका। अन्तिम अमोघ शस्त्र चक्र कृष्ण की ओर प्रेषित किया। ज्वाला मालाओं को उगलता हुआ कल्पान्तकालीन मेघ गर्जना करता हुआ कृष्ण की ओर बढ़ा। वह चक्र कृष्ण की तीन बार प्रदक्षिणा कर उसके पार्श्व में, उनके दक्षिण संकंध पर स्थिर हो गया।

कृष्ण ने तत्काल उसको अपनी तर्जनी अँगुल पर धारण कर दिया, पुण्यात्माओं के प्रभाव से शत्रुओं के अस्त्र भी अपने हो जाते हैं। उसी चक्र से जरासंध का सिर काट कर भूमि पर गिरा दिया।

वास्तव में यह युद्ध महाभारत युद्ध को ही दृष्टिगोचर करता है। आपने श्री कृष्ण भगवान के सीधे हाथ की छोटी अँगुली पर एक घूमता हुआ पहिया देखा होगा। और अधिकांश हम सभी को पता है कि इसे सुदर्शन चक्र कहते हैं। लेकिन इस चक्र का क्या अर्थ है? “यह सम्यक्

दर्शन(आत्म साक्षात्कार) है जो उन्हें भगवान नेमिनाथ की द्रिव्य दृष्टि से प्राप्त हुआ था। सुदर्शन का अर्थ है सम्यक् दर्शन(मैं शुद्धात्मा हूँ की दृष्टि)। अतः सुदर्शन चक्र अर्थात् सम्यक् दर्शन या आत्म साक्षात्कार। दर्शन अर्थात् दृष्टि; और सुदर्शन यानी सही दृष्टि। 'मैं आत्मा हूँ' यह सही दृष्टि है। अज्ञानता की वजह से इस दुनिया में सभी लोग भ्रान्त और गलत दृष्टि से ही अपना जीवन जी रहे हैं कि 'मैं शरीर हूँ या मैं नामधारी हूँ, जिस नाम से शरीर को पहचानते हैं। जब आत्म साक्षात्कार होता है तब सुदर्शन, अज्ञानता का नाश करके सही दृष्टि स्थापित होती है। यद्यपि श्री कृष्ण की इतनी रानियाँ थीं और वैभवशाली जीवन था फिर भी इस दृष्टि की वजह से वे इन सभी सांसारिक वैभव से हमेशा अलिप्त रहे। बाहर से सांसारिक कार्यों में लिप्त होते हुए भी, अंदर वे हमेशा जागृति में रहते कि "शरीर अलग है और मैं शुद्धात्मा हूँ। मैं किसी भी क्रिया का कर्ता नहीं हूँ।" उनका भौतिक शरीर कर्मों के नियम से अलिप्त नहीं था और इसीलिए वे कर्मों के प्रभाव से अलिप्त नहीं थे; लेकिन जब उनके प्रारब्ध से वैभवशाली जीवन और अनेकों पत्नियाँ आईं तब भी वे हमेशा इसी जागृति में रहते कि "मैं शुद्धात्मा हूँ।" योगेश्वर कृष्ण अपने अगले जन्म में तीर्थंकर बनकर वापस आएँगे

और करोड़ों लोगों को सही दृष्टि देकर मोक्षगामी होंगे।

महाभारतयुद्ध

जब पाण्डव बनवास का समय पूर्ण कर प्रकट हुए तब अपना अधिकार के लिए कौरवों से राज्य माँगा। जिससे दुर्योधन कुपित होकर इन्कार कर दिया। श्री कृष्ण शांति दूत बनकर दुर्योधन को समझाने के लिए गये कि केवल पाँच गांव दे दे, मैं उन्हें सन्तुष्ट कर दूंगा। परन्तु दुर्योधन टस से मस नहीं हुआ। श्री कृष्ण यदि युद्ध हुआ तो अति विनाश हो जाएगा। दुर्योधन ने श्री कृष्ण को भी चेतावनी दे डाली।

धृतराष्ट्र का युधिष्ठिर को सन्देश

पाण्डवों के दूत का आगमन एवं दुर्योधन के दुर्व्यवहार की बात जब धृतराष्ट्र ने सुनी तो वे चिन्ता मग्न हो गये। वे पाण्डवों की धर्मनीति एवं उनकी शक्ति को जानते थे, वे समझ गये यदि युद्ध हुआ तो परिवार का सर्वनाश हो जाएगा। विनाश को बचाने के लिए युधिष्ठिर को कहा, "वत्स! तुम धर्मात्मा और नीतिवान हो और दुर्योधन दुष्ट है, वह मेरी बात नहीं मानता, मेरा तुझ से आग्रह है कि विनाश को रोक लो, मैं आपसे अपेक्षा करता हूँ।"

भीष्मपितामह का कृष्ण को सन्देश

युद्ध भयंकर विनाश का सूचक है मैं चाहता हूँ कि तुम इस से दूर ही रहो। श्री कृष्ण- पितामह मैं तुझे विश्वास दिलाता हूँ कि मैं युद्ध में अस्त्र नहीं उठाऊँगा।

कृष्ण के पास सहायतार्थ दुर्योधन और अर्जुन

श्री कृष्ण अपने कक्ष में विश्राम कर रहे थे कि दुर्योधन आया और उनके सिर की तरफ खड़ा हो गया कि इतने में अर्जुन भी आ गया और श्री कृष्ण के पांवों के पास विराज गया। जब श्री कृष्ण की तन्द्रा टूटी तो सीधी निगाह अर्जुन पर गई, इतने में दुर्योधन ने कहा मैं पहले आया हूँ और आपकी सहायता चाहता हूँ. श्री कृष्ण जी ने कहा- आप दोनों आए हैं, मैं दोनों का शुभचिन्तक हूँ। एक तरफ मेरी नारायणी सेना होगी और एक तरफ मैं अकेला। दुर्योधन ने नारायणी सेना माँग ली और प्रसन्न कि मेरे पास बहुत शक्तिशाली सेना और पाण्डवों के पास अकेला कृष्ण। कृष्ण ने अर्जुन को अपनी सौगन्ध से अवगत करवा कर कहा- मैं तुम्हारा सारथी बनूँगा।

युद्ध के मैदान में

दोनों तरफ सेनाएं मैदान में पहुँच चुकी है। कौरवों की तरफ गुरु द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, भीष्म पितामह एवं समस्त परिवारजन को देख अर्जुन जिधर दृष्टि दौड़ाता है उधर ही परिवार जन . सेनाओं कि स्थिति ताऊ,चाचों, ससुरो और

सुहृदों को भी देखा, महाराज शान्तुन के वंशज को देखकर अर्जुन के मन में भाव प्रकट होने लगे, करुणा के भावा भरतखण्ड के चुने हुए योद्धा इस युद्ध में आ गये हैं। अभी कुछ देरी में युद्ध आरम्भ हो जाएगा, रक्त की नदियाँ बह जाएंगी, पृथ्वी रक्त-रंजित हो जाएगी, कौन जीवित रहेगा और कौन न रहेगा ?

अर्जुन का मन काँप उठा, क्या मुझे अपने गुरुजनों पर बाण उठाना होगा ? मैं तो भीष्म पितामह के चरणों को पूजता हूँ, या क्या पूजनीय भीष्म जी मुझे अपने शस्त्रों से मुझे मार डालेंगे? इन गुरुओं की कृपाओं का यही बदला होगा ? नहीं नहीं यह पूर्णतः कृतघ्नता है। मन में आया कि यदि मैं युद्ध करने से बच जाऊँ तो भी रक्तपात रूकने वाला नहीं। यह सोचकर अर्जुन का शरीर शिथिल हो गया और मन शोक सन्तप्त।

अर्जुन की दशा देखकर कृष्ण समझ गये कि पार्थ युद्ध के प्रति उदासीन हो गया है। पूछ बैठे अर्जुन क्या सोच रहे हो ?

कृष्ण का प्रश्न सुनते ही जिन भाषित धर्म की शिक्षाएं जागृत हो गई, हिंसा तो घोर पाप है।

सम्पूर्ण प्राणी जीना चाहते हैं, मरना कोई भी नहीं चाहता। इसलिए किसी बुद्धिमान को जीव हिंसा नहीं करनी चाहिए।

श्रीकृष्ण-अर्जुन इतनी विशाल सेना को देखकर तुम्हारे चेहरे का रंग क्यों उड़ गया है ? गाण्डीव तुम्हारे हाथों से छूट गया है और रणभूमि में आकर कायरों कि भाँति कैसे बैठ गये ? अर्जुन ने कहा- मैं कायर नहीं हूँ, पथभ्रष्ट हो गया था, आपके उपदेश ने मेरी आँखे खोल दी हैं। तभी श्री कृष्ण ने गीता का उपदेश देकर अर्जुन में जोश डाला। वह गीता का उपदेश अब धार्मिक सन्देश बन चुका है।

रूक्मिणि-प्रसंग

श्री कृष्ण का द्वारिका में सुशासन चल रहा था। श्री कृष्ण प्रजावात्सल, विनम्र और मृदु नरेश थे। वैभव और सुखीधिम्य के कारण द्वारिका देवपुरी समान थी। एक दिवस नारद जी राजभवन में पहुँचे। विनम्र और श्रद्धा के साथ श्री कृष्ण ने उनका हार्दिक स्वागत किया। एक प्रश्न उनके मन में मचल उठा कि श्री कृष्ण की भाँति रानियाँ भी विनम्र है अथवा नहीं? नारद जी अन्तःपुर में पहुँचे। रानियाँ ने उनका नम्रता स्वागत किया, किन्तु व्यस्त सत्यभामा से उनकी अपेक्षा हो

गयी। नारद जी ने निश्चय किया कि सत्यभामा का गर्भ हरण अनिवार्य है और अन्त-पुर से लौट गये।

नारद जी अब ऐसी अनुपम सुन्दरी की खोज में थे श्री कृष्ण की नवरा बनाकर सत्यभामा का गर्भ भंग कर सके। कुंडिनपुर नरेश भीष्मक की राजकन्या रूक्मिणि त्रैलोक्य सुन्दरी थी। नारद जी के आगमन पर रूक्मिणि ने हो उन्हें प्रणाम किया। ऋषि ने उन्हें आशीर्वाद दिया कि भरतङ्गधीश श्री कृष्ण तेरे पति होंगे। जिज्ञासा तुष्ट करते हुए उन्होंने रूक्मिणि को श्री कृष्ण के रूपगुण से सविस्तार परिचय भी करवाया। राजकुमारी के मन में श्री कृष्ण के प्रति पूर्व राग जागृत हो गया और उसने उन्हें पति रूप में वरण करने का निश्चय कर लिया। नारद जी ने स्वयं ही एक रूक्मिणि का चित्रफलक तैयार कर श्रीकृष्ण को दे दिया। इस अनुपम रूप माधुरी पर श्रीकृष्ण मुग्ध हो गये। प्रणव प्रस्ताव कुंडिनपुर भेजा गया। कुमार रूक्मिणि प्रस्ताव से क्षुब्ध हो गये। दूत को उस ने उत्तर में कहा-कि रूक्मिणि का हाथ मैं एक ग्वाले को नहीं दे सकता। उस का परिणय निश्चित ही शिशुपाल के साथ ही सम्पन्न होगा।

रूक्मिणि जब बालिका थी तब अतिमुक्त मुनि ने भविष्यवाणी की थी वह श्रीकृष्ण की पट्टरानी बनेगी। धाय फुइका ने इसकी चर्चा करते हुए कहा- कुमार रूक्मि ने ठीक नहीं किया। फुइका रूक्मिणि की मनोकामना पूर्ण करने में

सहयोगिनी बनी। एक गोपनीय पत्र उसने श्रीकृष्ण को भेजा कि मध्य माह की शुक्ल अष्टमी को नागपूजा के साथ मैं रूक्मिणि को उद्यान में लाऊँगी। हे कृष्ण! यदि रूक्मिणि का प्रयोजन हो तो वहाँ आ जाना, अन्यथा वह शिशुपाल की हो जाएगी। श्रीकृष्ण केवल पराक्रम से परिचित रूक्मि का संशय मन भी आशान्त था। उसने शिशुपाल को शीघ्र आने का निमन्त्रण दिया। श्रीकृष्ण-रूक्मिणि प्रणय से अवगत शिशुपाल सेना के साथ कुंडिलपुर पहुँच गया। इधर योजनानुसार फुइका रूक्मिणि के साथ उद्यान में पहुँची, बलराम सहित आए श्रीकृष्ण प्रतीक्षारत थे। उन्होंने ने फुइका को प्रणाम कर रूक्मिणि को रथारूढ होने का संकेत किया। धाय की अनुमति से उसने ऐसा ही किया। रथ से उसने प्रणाम किया और फुइका व सहायतार्थ अन्यदासियाँ ने चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगी कि श्रीकृष्ण रूक्मिणि का हरण कर ले गये। रूक्मि और शिशुपाल अपनी सेना सहित पीछा करते हुए समीप आ गये तो इन की शक्ति से परिचित रूक्मिणि अत्यन्त व्याकुल हो गई। श्रीकृष्ण ने बाण चलाकर ताड़पंक्ति को बंध दिया, चुटकी में मीड़कर अंगूठी के हीरे का चूरा कर दिया। उनके पराक्रम का परिचय पाकर रूक्मिणि आश्वस्त हो गई। श्रीकृष्ण से बलराम ने कहा कि तुम वधु को लेकर आगे चलो। मैं शत्रु को रोककर उनका निग्रह करता हूँ। भाई के आश्वस्त करने से रूक्मिणि

व्याकुल हो गई। उसने बलराम से विनती की, कि वे भाई का वध न करें। श्रीकृष्ण आगे बढ़ गये और बलराम ने मूसल से अरिदल का नाश कर दिया। हल धारण करने पर शेष सेना भी तितर-बितर हो गयी। अकेले रूक्मि बच गया। बलराम ने बाणों से उसका रथ खंडित कर कवच विहीण कर दिया। क्षुरप बाण से उसकी दाढ़ी मूँछ भी उखाड़ दी। वे बोले मेरी अनुज के बंधु होने के कारण मैं तेरा वध नहीं करूँगा, जा छोड़ देता हूँ। लज्जित रूक्मि लौटकर कुंडिनपुर न गया, भोज फट नगर बसाकर वहीं रहने लगा।¹⁰⁷ द्वारिका पहुँचते-पहुँचते रूक्मिणि के मन में हीणत्व आने लगा। श्रीकृष्ण की अपरानियाँ आपके साथ वैभव लाभी होंगी और वह खाली हाथ है। श्रीकृष्ण ने उसे रघुराम मूर्ति कहकर उसके संकोच में द्वेष किया, तथा उसको सत्यभामा के महल के पास पृथक महल में रखा और उसके साथ गंधर्व विवाह किया।

आठ पट्टरानियाँ- अगुमहिषियाँ

श्रीकृष्ण की अनेक रानियाँ थीं, जिन की संख्या 16 हजार मानी जाती है। इन में से सत्यभामा एवं रूक्मिणि सहित 8 प्रमुख पट्टरानियाँ थीं और अगुमहिषियाँ कहलाती थीं। शेष 6 पट्टरानियों के नाम थे-जाम्बवती, लक्ष्मणा, सुसीमा, गौरी, पद्मवती एवं गंधारी। जाम्बवती गगन नन्दन के विद्याधर राजा जाम्बवान की पुत्री थी और उसकी माता का नाम श्रीमती था। लक्ष्मणा सिंह रथ स्वामी हिरण्य लोग की पुत्री थी

जो श्री कृष्ण की आज्ञाओं की अवमानना किया करता था। श्री कृष्ण ने लक्ष्मणा का हरण किया था। सुसीमा अराक्षरी (आयुस्वरी) नगरी के राजा की पुत्री और नमुचि की बहन थी जिसे अपनी अजेयल का दर्प था। प्रभास तीर्थ से श्री कृष्ण नमुति का वध कर उसे हरण कर लाये थे। गैरी मख्यदेश के राजा वीतभम की पुत्री थी। पद्मावती बलराम की माता रोहिणी के भाई आरिष्टपुर नरेश हरिण्यनाभ की पुत्री थी। गंधारी गंधार देश की पुष्कलावती नगरी के राजा नग्नजित की पुत्री थी। नग्नजित के निधन पर गंधारी का भाई चारूदत्त राजा बना पर स्वजनों द्वारा अपदस्थ कर दिया गया था। श्री कृष्ण ने उन्हें पुनः राज्यारूढ कराया था। उसने गंधारी का विवाह श्रीकृष्ण जी से साथ कर दिया था।

प्रद्युम्न जन्म एवं स्पुपहरण प्रसंग-

अतिमुक्त मुनि से रूक्मिणि ने एक प्रश्न किया, सत्यभामा भी उपस्थित थी। मुनिराज ने उत्तर दिया-कि तुम्हें श्रीकृष्ण जैसा ही पुत्र उत्पन्न होगा। तद्रनंतर दोनों रानियों में विवाद हो गया। प्रत्येक का मानना था कि कथन उनके विषय में था। निर्णयार्थ श्रीकृष्ण के पास आयीं। दुर्योधन भी उस समय उपस्थित था। जिससे सत्यभामा ने कहा- कि यदि मुझे पुत्र हुआ तो वह तुम्हारा जमाता बनेगा। तुरन्त ही यह अधिकार रूक्मिणि अपना जताने लगी। दुर्योधन यही कह सका कि दोनों में से किसी के भी पहले पुत्र होगा उस से ही अपनी पुत्री का

विवाह कर दूंगा। सत्यभामा ने एक क्रूर शर्त रख दी कि हम दोनों में से जिसका पुत्र पहले विवाह करेगा-विवाह के समय दूसरी को अपना सिर मुँडवा लेना पड़ेगा। रूक्मिणि ने शर्त स्वीकार कर ली बलराम, श्रीकृष्ण व दुर्योधन शर्त के साक्षी बने।

एक रात्रि रूक्मिणि ने स्वप्न देखा कि वह श्वेत बैल पर स्थित विमान में आरूढ़ है। तभी उसकी निद्रा भंग हो गई और एक महर्दिक देव महाशंभु देवलोक से च्यव कर उसके उदर में प्रविष्ट हुआ। श्रीकृष्ण ने कहा कि मुनि वाणी सत्य घटित होने वाली है। ज्ञात होने पर सत्यभामा ने भी एक अनोखा स्वप्न की चर्चा श्रीकृष्ण जी से की और वे यथार्थ को भाँप गये। संयोग से दोनों रानियों ने एक साथ ही गर्भ धारण किया। रूक्मिणि गूढ़ गर्भ थी उसमें वाह्य लक्षण वही दिखाई देते थे, पर दोनों ने एक ही दिन पुत्रों को जन्म दिया। रूक्मिणि के पुत्र का नाम प्रद्युमन और सत्यभामा के पुत्र का नाम भानु रखा गया।

शिशु प्रद्युमन को श्री कृष्ण अंक में लिए बैठे थे कि उन्हें लगा कि रूक्मिणी बालक को उठा ले गई किन्तु वह नहीं ले गई थी बलक का अपहरण हो गया था और उस से माता बहुत दुःखी हुई। प्रद्युमन के पूर्व भव का शत्रु धुम केतू ने ही रूक्मिणी का रूप धारण कर अपहरण कर लिया था और वेताढ्यगिरी पर छोड़ गया कि बालक भूख प्यास से तड़प कर प्राण त्याग दे। विद्याधर भास-संवर बालक को उठा ले गया और उसकी

निस्संतान पत्नी करक माला उसे पोषित करने लगी। काल संवर ने घोषित कर दिया कि उसकी गूढ गर्भा पत्नी ने पुत्र को जन्म दिया है। बालक की खोज में नारद जी ने सहायता की। उन्होंने ने सीमंधर स्वामी से पता लगाने का अनुरोध किया। बात कर सीमंधर स्वामी ने बताया कि बालक मेघ कूट नगर में कालसंवर के घर में बड़ा हो रहा है, किन्तु पूर्व जन्म के कर्म वश अभी 16 वर्ष उसे वहीं रहना होगा। मेघकूट मे बालक को सकुशल देख कर द्वारिका लौटे और श्रकृष्ण को सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सीमन्धर स्वामी ने प्रद्युमन के पूर्व भव का भी परिचय नारद जी को दिया। 16 वर्ष की आयु प्राप्त करते-करते प्रद्युमन गुण-शील और कलाओं मे प्रवीण नहीं अपितु व सुन्दर और आकर्षक युवक भी हो गये थे। कंचन माला उनपर मुग्ध हो गई रहस्योद्घाटन करते हुए कि मैं तुम्हारी जननी हूँ, उसने निमन्त्रण दिया कि आ मेरे साथ क्रीडा करो। प्रद्युमन ने काल-संवर और उसके पुत्रों का भय बताकर पिँड छुड़ाना चाहा कि वे मुझे जीवित न छोड़ेंगे। कामांध कंचन-माला ने प्रज्ञप्ति और गौरी विद्याएं दीं और कहा- इन से तुम कभी किसी से पराजित नहीं हो सको गे। प्रद्युमन ने दोनों विद्याओं को सिद्ध भी कर लिया और कंचन-माला के प्रस्ताव को अनुचित बताकर घर छोड़ कर चल दिया। प्रतिशोध वश कंचन-माला ने अपने पति-पुत्रों को रो-रो कर कहा- कि प्रद्युमन मैरा शील भंग कर भाग गया है। पिता-पुत्र सब उसके पीछे भागे और घोर युद्ध हुआ।

विद्याधर की पराजय हुई और उन्हें सन्देह हुआ कि इसको विद्याएं प्राप्त हैं। लौटकर कालसंवर ने पत्नी से अपनी विद्याएं लौटाने को कहा-किन्तु वह तो प्रद्युमन को दे चुकी थी। पत्नी के दुराचार को समझ कर खूब भर्त्सना की और प्रायश्चित हेतु प्रद्युमन के पास लौटा। तभी नारद जी आ गये, जिन्हें प्रज्ञप्ति विद्या से प्रद्युमन को पहचान लिया और वह उनके साथ द्वारिका को चल दिया।

सत्यभामा प्रसन्न थी। आज उसके पुत्र के विवाह का दिन था। रूक्मिणी उदास थी। पति-पुत्र मुक्त होते हुए भी उसके केश कटवा कर करूप बनाना होगा। वह चिन्तामग्न थी कि इसी समय द्वार पर लघु मुनि ने आकर बताया कि मैं 16 वर्षीय दीर्घ तपस्वी हूँ मुझे आहार दान दें। घर में केवल सिंहकेसरियां मोदक थे, जिन्हें श्री कृष्ण ही पचा सकते थे। मुनि (प्रद्युमन) सारे मोदक खा गये। इसी समय केश काटने का समय आया की दासियाँ आ गईं, किन्तु प्रद्युमन ने सत्यभामा सहित दासियों को विद्या प्रयोग से केशरहित कर दिया। शर्त पूरी करवाने में सहायता के लिए सत्यभामा श्रीकृष्ण के पास गयी जिन्होंने बलराम को रूक्मिणी के पास भेजा। उन्होंने श्रीकृष्ण को रूक्मिणी के पास देखा और लौट आए रूक्मिणी को आनकर हर्ष हुआ कि मुनि उसी का पुत्र प्रद्युमन है। विद्या से ही प्रद्युमन ने दुर्योधन की राजकुमारी का अपहरण कर लिया। दुर्योधन ने श्रीकृष्ण से सहायता मांगी। श्रीकृष्ण ने कहा-

कि मैं तो स्वयं 16 वर्ष से पुत्र वियोगी हूँ। मैं क्या सहायता करूँ। इस पर प्रद्युमन ने अनुमति लेकर राजकुमारी को उपस्थित कर दिया और उसका भानु के साथ पणिग्रह करवाया। इसके बाद अपने पूर्ण स्वरूप में प्रकट होने से पहले उसने माता रूक्मिणी को रथ में बैठा कर श्रीकृष्ण को ललकारा कि मैं इसका हरण कर ले जा रहा हूँ। तुम में शक्ति है तो रोको। भीषण युद्ध हुआ और मुनि वेशधारी प्रद्युमन ने श्रीकृष्ण को सस्त्रविहीन कर दिया। उनकी सेना बिखर गई। श्रीकृष्ण को दक्षिणात्य नेत्र स्फुरित हुआ और नारद जी ने श्रीकृष्ण को बताया कि यह तुम्हारा पुत्र प्रद्युमन ही है जिसने सिद्ध कर दिया कि पुत्र पिता से बढ़कर है।

शाम्ब-प्रसंग

ईर्ष्या वश सत्यभामा ने श्रीकृष्ण से कहा कि मुझे भी प्रद्युमन जैसा ओजस्वी पुत्र चाहिये। श्रीकृष्ण ने अष्टम पौषधव्रत ग्रहण किया और नैगमेषी देव ने प्रकट होकर रून्म हार देते हुए कहा कि जिस स्त्री का यह हार पहना कर आप सेवन करेंगे उसे प्रद्युमन सा पुत्र होगा। जब श्रीकृष्ण ने सत्यभामा को निमन्त्रित किया तो प्रद्युमन प्रज्ञप्ति विद्या से सारा रहस्य जान गये। उन्होंने जाम्बवती को सारी बात बताकर उसे सत्यभामा का रूप देकर श्री कृष्ण के पास भेज दिया। वह धन्य हो गई। प्रसन्न और तुष्ट मन से वह लौट आई। तभी सत्यभामा पहुँच गई। श्री कृष्ण आश्चर्य में पढ़ गये। सोचा कि सत्यभामा कामोत्सुक हो

पुनः आई है। उन्होंने पुनः क्रीड़ा की तभी प्रद्युमन ने भेरी बजा दी सत्यभामा का हृदय भय-कम्पित हो गयी। श्रीकृष्ण जान गये कि प्रद्युमन ने सत्यभामा को छल लिया है। अब इसे कायर पुत्र होगा। इस का हृदय भयभीत हो गया था। कालान्तर में जामवती ने पुत्र को जन्म दिया। जिसका नाम शाम्भु रखा गया और सत्यभामा के पुत्र का नाम भीरू कुमार।

वैदर्भी-प्रद्युमन परिणय

रूक्मिणी पने पितृगृह से बिगड़े सम्बन्धों को सुधारना चाहती थी। भाई रूक्मि की पुत्री वैदर्भी के साथ प्रद्युमन का विवाह को अच्छा साधन समझ उसने परिणय प्रस्ताव भेजा, किन्तु रूक्मि ने अनादरपूर्वक उसे अस्वीकार कर दिया। प्रद्युमन ने माता को आश्वस्त किया। कि यह विवाह अवश्य होगा और मामा की स्वीकृति से होगा। पूर्व भव के सम्बन्धों के कारण प्रद्युमन का शाम्भु से विशेष स्नेह था। दोनों किन्नर और चण्डाल रूप में भेजकर नगर पहुँचे। रूक्मि और वैदर्भी इनकी संगीतकला से प्रभावित हुए। राजकुमारी वैदर्भी ने पूछा तुम द्वारिका से आए हो तो क्या प्रद्युमन को भी जानते हो? इनके मुख से प्रद्युमन की प्रशंसा सुनकर बहुत प्रसन्न हुई। राजा का हाथी मतवाला होकर विनाश करने लगा। राजा ने घोषणा कर दी जो कोई इसको वश में कर लेगा उसको मुँह माँगा पुरस्कार दिया जाएगा। प्रद्युमन ने हाथी को नियन्त्रित

कर लिया। भोजन की कठिनाई कहकर राजकुमारी को पुरस्कार में मांग लिया। राजा ने क्रुद्ध होकर इन दोनों को बाहर निकाल दिया। विद्या बल से प्रद्युमन ने नगर के बाहर एक भव्य महल बनाया। एक रात्री प्रद्युमन अपनी प्रज्ञप्ति विद्या से वासत्विक रूप में वैदर्भी के पास पहुँच गया। वैदर्भी की सहमति से दोनों का गंधर्व विवाह हो गया। अपना नाम गोपनीय रखने का निर्देश देकर प्रद्युमन चला आया। सौभाग्य और परिणय सूचक चिन्हों को देखकर सब ने अनेक प्रश्न किये पर वैदर्भी मूक बनी रही। कुपित होकर राजा ने किन्नर-चण्डाल को बुलाकर राजकुमारी को उन्हें दे दिया। नगर के बाहर जब महल में पहुँचे तो बन्दी जन प्रशास्ति गान करने आए और रहस्य खुला कि किन्नर-चण्डाल तो प्रद्युमन-शांभ हैं। राजा ने उन्हें सादर अपने महल में बुलाया और वैदर्भी-प्रद्युमन परिणय सम्पन्न करवाया।

नारद लीला से द्रौपदी हरण

महाभारत युद्ध में महा विनाश के पश्चात् पांडवों को हस्तिनापुर का राज्य मिल गया। वह वहाँ सुखपूर्वक राज्य संचालन करते आनन्द पूर्वक रह रहे थे कि देवऋषि नारद जी भ्रमण करते हस्तिनापुर पहुँच गये। उस समय पाँचों पाण्डव, माता कुन्ती और द्रौपदी सह परिवार नारद जी को देखकर द्रौपदी के अतिरिक्त सब ने ऋषि जी का आदर सत्कार वन्दन

नमस्कार किया और आदरणीय आसन पर आमन्त्रण किया। नारद जी ने पहले जल छिड़का फिर अपना आसन बिछाया और बैठ गये। द्रौपदी ने अप्रत्याख्यानी जानकर नारद जी का आदर-सत्कार नहीं किया। द्रौपदी की उपेक्षा नारद जी को चुभ गई। इसने अपने रूप-लावण्य यौवन के अभिमान में मेरा अनादर किया। इसका गर्व उतारना और दण्ड देना उचित है। हस्तिनापुर से निकले विचार किया कि भरतक्षेत्र में कृष्ण के समक्ष कोई ऐसा सूरमा नहीं जो द्रौपदी का हरण कर सके, धातकीखण्ड में अमरकंका राजधानी के नरेश पद्मनाभ की ओर निगह गई और आकाश मार्ग से अमरकंका पहुँच गये। नरेश पद्मनाभ ने नारद जी का यथायोग्य स्वागत किया और अर्ध्य देकर विशेष आसन पर बिठाया। नारद जी ने जल छिड़का और अपना आसन लगाकर बैठ गये। पद्मनाभ ने अपना अन्तःपुर दिखाया अपनी रानियों का सौन्दर्य आदि की प्रशंसा करते पूछा- माहात्मन् मेरी रानियों जैसा कहीं आप ने कोई और देखा।

“ अरे पद्मनाभ ! तुम तो कुँए के मेढक के समान हो। हस्तिनापुर के पाण्डवों की रानी द्रौपदी के आलौकिक सौन्दर्य के सामने यह सब तुच्छ हैं। उस के पाँव के अँगूठे की भी बराबरी नहीं कर सकती।”

नारद जी तो चले गये, द्रौपदी को मज़ा चखाने के लिए उसे उकसा गये।

पद्मनाभ द्वारा द्रौपदी का हरण

पद्मनाभ के मन में द्रौपदी को प्राप्त करने के लिए आकांक्षा उत्पन्न हो गई कोई युक्त सोचने लगे। भरतक्षेत्र से लवणसमुद्र को पार कर लाना कोई असान काम नहीं। देव अराधना की- देव उपस्थित हुआ और पद्मनाभ से पूछा-याद करने का कारण।

पद्मनाभ, " देवानुप्रिय ! हस्तिनापुर में पाण्डवों की रानी द्रौपदी को प्राप्त करने का अभिलाषी हूँ, कृपया आप उसे यहां ला दे।"

देव ने उपयोग लगाया और कहा- राजन् ! द्रौपदी सती है, तुम भूल कर रहे हो। वह अन्य पुरुष के साथ भोग नहीं करेगी। फिर भी मैं आपका सेवक हूँ उसे यहां ला देता हूँ।

देव अपनी विद्या से उड़ा, लवणसमुद्र पार कर हस्तिनापुर के महल में जहां द्रौपदी निद्राधीन को उठाया और लाकर अमरकंका की अशोक वाटिका में रख दिया। जब द्रौपदी की तन्द्रा टूटी देखने लगी मैं कहाँ हूँ, यह भवन मेरा नहीं है, मुझे

कौन यहाँ लेकर आया, अवश्य ही कोई देव-माया है। अब मैं क्या करूँ? भगवन्! मेरे किन पापों का फल है।

पद्मनाभ सावधान और अलंकृत होकर आया, सुभगे ! चिन्ता मत कर, तुम्हें मेरे भवन में एक देव तुम्हारा हरण कर ले आया है। मेरे साथ उत्तम भोग कर जीवन सफल करो।

द्रौपदी ने विचार किया- अब चतुराई से अपना बचाव करना चाहिए। द्रौपदी राजन् ! कोई भी स्त्री अपने पति को नहीं भूल सकती, मुझे भूलने के लिए एक मास का समय दो, यदि कोई मुझे नहीं लेने आया तो मैं तुम्हारी हो गई. पद्मनाभ मान गया।

उधर हस्तिनापुर में तुफान मच गया, महल को चारों ओर पहरा है द्रौपदी कहाँ गई। चारों ओर नगर के गुप्तचर ढूँढने निकले पर कहीं कोई सुराग नहीं मिला। पाण्डव परेशान, आखिर कुन्ती को कृष्ण के पास भेजा सहायता के लिए। जब कृष्ण जी को समाचार मिला, उसी समय देवऋषि नारद जी का आगमन हुआ। कृष्ण जी ने नारद जी से कहा- आप समस्त ब्रह्मांड में विचरण करते हो कहीं द्रौपदी देखी। नारद जी-हां, धातकीखण्ड की अमरकंका राजधानी में पद्मनाभ के महल में द्रौपदी के समान एक स्त्री ध्यानस्थ बैठी थी। कृष्ण जी समझ गये और पाण्डवों को सन्देश भेजा , आप अपनी सेना सहित

पूर्व-दिशा की ओर समुद्र के किनारे पहुँचो और मेरी प्रताक्षा करो-

पद्मनाभ की पराजय और द्रौपदी का प्रत्यर्पण

पाण्डव-भ्राता अपनी सेना सहित समुद्र तट पर पहुँच गये। लवण समुद्र की विशालता को देखकर, उसम् जलमग्न हुए पर्वत, परम दाहक बड़वानल, एक ही चक्र में नष्ट कर देने वाले जलावर्त औप भयंकर जीव-जन्तुओं को देखकर हताश हो गये। वे चिन्तामग्न ही थे कि श्री कृष्ण पहुँच गये। श्री कृष्ण जी ने वहाँ पहुँच कर तेले का तप कर समुद्र के अधिष्ठाता देवता सुस्थित देव का स्मरण करने लगे। सुस्थित देव उपस्थित हुआ और पूछने लगा, "कहो, देवानुप्रिय ! मैं आपकी क्या हित करूँ?"

श्री कृष्ण वासुदेव ने कहा, "देव ! द्रौपदी देव को अमरकंका से लाने के लिए हमें इस समुद्र को पार करना है। तुम मेरे और पाँचो पाण्डवों के रथों को इस समुद्र में मार्ग दो, जिससे हम अमरकंका पहुँच कर द्रौपदी को ले आवें।"

देव बोला-"हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार पद्मनाभ के सम्बन्धित देव द्रौपदी का हरण कर ले गया मैं उसी तरह द्रौपदी को उठा के ले आऊँ और पद्मनाभ की सेना परिवार सहित समुद्र में डुबा दूँ।"

” नहीं देव! तुम मुझे और पाँचो पाण्डवों को अपने रथों समेत समुद्र में मार्ग दें, मैं स्वयं द्रौपदी को लाऊँगा।”

ऐसा ही हुआ श्री कृष्ण और पाँचो पाण्डवों के रथ समुद्र पार करके अमरकंका के उद्यान में पहुँच गये।

श्री कृष्ण ने अपने सारथी दारुक को आज्ञा दी कि पद्मनाभ के दरबार में जाकर कह दो कि तुम कृष्ण की भागिनी द्रौपदी को उड़वा लिया तुमने अपनी मृत्यु को आव्हान किया, जीवन चाहता है तो लौटा दे अन्यथा युद्ध के लिए तत्पर हो जाओ।

पद्मनाभ क्रोधित होकर बोला, “ मैं द्रौपदी को नहीं लौटाऊँगा, हाँ युद्ध के लिए तत्पर हूँ अभी आता हूँ।”

पद्मनाभ को आते देख श्री कृष्ण बोले-“ कहो बच्चे पद्मनाभ के साछ युद्ध तुम करोगे या मैं करूँ।”

“स्वामिन्, हम युद्ध करेंगे। आप देखिए।” सस्त्र-अस्त्र सज्ज रथाअरूढ होकर पद्मनाभ के सामने जा डटे। युद्ध आरम्भ हुआ पद्मनाभ ने थोड़ी ही देर में पाण्डवों पर भीषण प्रहार किया जिससे पाण्डवों के पसीने छूट गये और भाग कर श्री कृष्ण की शरण में आए। अब आप जो उचित समझे वह करें।

श्री कृष्ण पद्मनाभ के सामने पहुँचते ही पाँचजन्य शंख की ध्वनि की। शंख से भयभीत पद्मनाभ की तीसरे हिस्से की

सेना भाग गई। इसके बाद श्री कृष्ण ने सांरग धनुष की टंकार से शेष आधी सेना भाग गई, पद्मनाभ साहसहीन होकर अपने नगर में घूसकर दरवाजे बन्द करवा लिए। श्री कृष्ण भी दरवाजे के पास आए और अपना विशाल रूप धारण कर पाँव से ठोकर मार कर राजधानी के दरवाजों को ध्वस्त कर दिया। पद्मनाभ को जीवन के लाले पड़ गये और अन्त में द्रौपदी की शरण में गया, “देवी, अब मैं तेरी शरण में आया हूँ अब तू ही मेरी रक्षा कर सकती है।”

“ क्या तुम वासुदेव श्री कृष्ण के महाप्रताप को नहीं जानते, उसकी अवज्ञा कर तुम मुझे लाए हो, तुम्हारी दुराचारी से तुम्हारी दुर्दशा होने वाली है, तुम जाओ श्री कृष्ण के चरणों में जाकर क्षमा माँग लो, वे पुरुषोत्तम हैं, शरणागत वात्सल्य हैं। यही मार्ग तुम्हारी रक्षा का है। ”

पद्मनाभ ने ऐसा ही किया, श्री कृष्ण ने कहा-नीतिहीन, दुराचारी, तू नहीं जानता कि द्रौपदी मेरी भागिनी है, जा अब तू निर्भय है। श्री कृष्ण ने द्रौपदी को रथ में बिठाया और ला कर पाण्डवों को सौंप दी।

दो वासुदेवों की ध्वनि मिलन श्री कृष्ण का रोष और पांडवों को देश निकाला

उस समय धातकीखण्ड के कपिल वासुदेव भगवान के समोसरण मे थे कि श्री कृष्ण ने पाँचजन्य से ध्वनि की कपिल वासुदेव को सन्देश हो गया कि दूसरा वासुदेव कौन आ गया। भगवान ने कहा- भरतक्षेत्र के कृष्ण वासुदेव आए हैं, कपिल मैं उन्हें मिलना चाहता हूँ, भगवान-कभी दो वासुदेव नहीं मिल सकते, हाँ तुम्हें वह लवणसमुद्र मे जाते उनका ध्वज दिखाई देगा। कपिल भगवान को वन्दना कर समुद्र तट पर आए, कपिल ने भी शंखनाद कर सन्देश दिया, लौट आओ में आपके दर्शनाभिलाषी हूँ। श्री कृष्ण ने भी शंखनाद से उत्तर दिया, मित्र, मैं आपका स्नेह स्वीकार करता हूँ, किन्तु अब बहुत दूर आ चुका हूँ लौटना असंभव है। वहां से लौटकर कपिल वासुदेव जब नगरी में आये तो नगरी कि भगनवस्था कैसे हुई, पद्मनाभ भरतक्षेत्र के कृष्ण ने आक्रमण कर दिया और खण्डहर बना दिया, यह तो आपका भी अपमान है। कपिल वासुदेव-तुम्हारे कुकृत्य से यह सब हुआ, तुम राज्य के अधिकारी नहीं, पद्मनाभ को निर्वासित कर उस के पुत्र का राज्यभिषेक किया।

जब श्री कृष्ण और पाँडव लवणसमुद्र को पार कर गंगा महानदी के पास आए, तो पाण्डवों को कहा-तुम नौका में गंगा पार कर जाओ और नौका लौटा देना मैं सुस्थित देव से मिल कर आता हूँ। पाण्डव नौका से पार कर आ गये और नौका

वापिस नहीं भेजी। कृष्ण अपने भुजबल से पार कर आए और पूछा नौका क्यों नहीं भेजी।

पाण्डव बोले- आपका सामर्थ्य देखने के लिए नौका नहीं भेजी। पाण्डवों की बात सुनकर कृष्ण कोपायमान हो गये और लोहदण्ड से उनके पाँचों रथों को चूर कर दिया और कहा- तुम मेरे राज्य से निष्कासित हो जाओ। पाण्डव द्रौपदी को लेकर हस्तिनापुर आए और माता कुन्ती से कहा- हमें कृष्ण की सत्ता में रहने का अधिकार नहीं रहा। अब कहां जाएं।

कुन्ती कृष्ण के पास गई और पाण्डवों के लिए याचना करने लगी। “ भूआ जी ! चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव अपूचिवचन वाले होते हैं। उनके निकले वचन व्यर्थ नहीं हो सकते। इसलिए निर्वासन की आज्ञा अप्रभावित नहीं होगी।” हाँ दक्षिण की ओर समुद्र तट पर जा कर पाण्डु-मथुरा नामक नगर बसा ले और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करें।

भविष्य कथन

श्री कृष्ण भगवान अरिष्टनेमी की धर्म सभा में उपस्थित हुए, प्रश्न किया कि अलकापुरी द्वारिका का भविष्य क्या है ? भगवन्- सुरा,अग्नि और द्वीपायन के निमित्त से द्वारिका नष्ट हो जाएगी। मदिरापान से उन्मुक्त यादव कुमारों का उपद्रव से द्वीपायन ऋषि के निमित्त द्वारिका जल जाएगी, तुम माता-

पिता परिवार से वंचित होकर बलदेव को साथ लेकर पांडवों के पास पाण्डु-मथुरा को जाओगे कि रास्ते में जराकुमार तुम्हारा भाई मृग समझ कर तुम्हारा वध कर देगा। श्री कृष्ण-कोई उपाय, भगवन-धर्म ध्यान द्वारिका को बचाए रखे गा।

द्वारिका के रक्षार्थ मद्य-निषेध

श्री कृष्ण ने मथुरा में शराब के सभी उत्पादन बन्द करवा दिए और जितनी शराब थी उसको कादम्ब वन में पर्वत की कादम्बरी गुफा के शिलाखण्डों में फिंकवा दिया। समस्त जनता को अवगत करवा दिया द्वारिका में मद्य निषेध है। इस आज्ञा के साथ ही घोषणा करवा दी कि इस सुन्दर द्वारिका का सुरा, अग्नि व द्वैपायन विनाश का कारण बने गें घर घर में आयम्बिल तपस्या होनी चाहिए, यदि कोई भगवान के चरणों में दीक्षित होना चाहता है तो राजकोष से उसके परिवार का पालन होगा।

उधर यादव कुमार भ्रमण करते-करते कादम्बरी वन में पहुँच गये, क्रीड़ा करते प्यास लगी, इधर-उधर ढूंढने पर यादव कुमार उस कुण्ड के पास पहुँच गये और बड़े चाव से मद्य-पान किया और नशे में झूमने लगे। द्वैपायन ऋषि अपनी साधना में मस्त था कि कुमारों ने लात-घूसों और पत्थरों से उसे अधमरा भूमि पर पटक दिया और अपने घरों को चले गये।। कृष्ण-

बलराम को सूचना मिल गई कि वह दौड़े ऋषि द्वैपायन की तरफ, क्षमायाचना करने लगे और शान्त करने का प्रयास करने लगे। द्वैपायन का क्रोध शान्त नहीं हुआ परन्तु आप दोनों को मैं मुक्त कर देता हूँ। मैं निदान कर चुका हूँ। द्वैपायन आयु पूर्ण कर अग्निदेव बना। जब अग्निदेव आता है द्वारिका में आयम्बिल हो रहे हैं। इस तरह बारह वर्ष व्यतीत हो गये, तब जनता कुछ आश्वस्त हो गई और एक दिन किसी ने भी आयम्बिल नहीं किया हुआ था कि अग्निदेव का जोर चल गया और द्वारिका जलने लगी।

कृष्ण -बलराम माता-पिता को रथ में डाल कर द्वारिका के बाहर निकलने वाले थे कि द्वार की भीत गिर गई, आप तो बाहर थे परन्तु माता-पिता अन्दर ही जल गये। अन्तोतगत्वा असह्य व्यथा से संतप्त कृष्ण और बलराम वहां से चल दिये।

शोकातुर कृष्ण ने कहा, " भैया! अब हम किस ओर जाना है? प्रायः सभी नृपवर्ग के मन में हमारे प्रति शत्रुता है।"

बलराम-दक्षिण दिशा में पाण्डव मथुरा की ओर।

कृष्ण- भैया मैंने उन को निर्वासित किया था।

बलराम- उन पर तुम्हारे असीम उपकार भी हैं।

वह दक्षिण की ओर चल पड़े। कठिनाईयों का सामना करते कौशम्बी वन पहुँच गये, कृष्ण- भैया मैं बहुत प्यासा हूँ, कहीं ठंडा जल लाकर पिलाओ। बलराम कृष्ण को एक वृक्ष के नीचे बैठाकर पानी की तलाश में चले गये। कृष्ण थके होने के कारण बाँये घुटने पर दाया पैर रख कर लेट गये, कि उसी वन में जरा कुमार शिकार की टोह में घूम रहा था कि कृष्ण के पाँव में पद्म चमक रहा था, जरा कुमार ने मृग का नयन समझ कर तीर चला दिया, तीर चलाने वाला कौन है मेरे सामने आए। कि जराकुमार तत्काल कृष्ण के पास पहुँच गया, मैं हतभाग्य तुम्हारा बड़ा भाई जरा कुमार हूँ, जिस लिए मैं 12 वर्ष से वन में हूँ वही आज हो गया। श्री कृष्ण, अब तुम यहां से चले जाओ नहीं तो बलराम तुझे मार देगा एक काम कर देना पांडवों को समाचार दे देना मेरी मृत्यु का और कहना द्वारिका जल कर राख हो गई है।

जब बलराम आया देखा कृष्ण थकावट से गहरी नींद में चला गया है। बलराम कृष्ण को कंधे पर उठाकर छः मास फिरता रहा, आखिर किसी सिद्धार्थ देव ने अवगत करवाया और दाह संस्कार करवाया।

बलराम ने देव से कहा- तुम मेरे हितैषी हो, तुमने मुझे मोह नींद से जगाया। कहो, अब मैं क्या करूँ।

“ महाराज ! आप भगवान अरिष्टनेमी जी के समीप निग्रन्थ-प्रवज्या ग्रहण कर जन्म-मरण की जड़ को काटने का अन्तिम प्रयास करो ।”

बलदेवजी सुथार और मृग का स्वर्गवास

बलदेव ने जैन भगवती दीक्षा ग्रहण कर ली, कुछ काल गुरु की सेवा में रहकर बाद में एकाकी साधना करने लगे । सिद्धार्थ उन का रक्षक बन कर रहा।

वन में घोर तपस्या करने लगे। मासोपवास पारणा करना और भिक्षा के लिए नगर में जाना। वन में पशु भी उनकी तपस्या से उन के पास रहने लगे। एक दिन बलराम मुनि मासोपवास पारणे के लिए नगर जा रहे थे कि एक महिला अपने छोटे बेटे को साथ लेकर कुँए से पानी भरने आई, उनका रूप देखकर देखती ही रही कि जो रस्सी मटके से बाँधनी थी अपने बेटे के गले में बाँधने लगी, मुनि ने अवगत करवाया और बच्चे को बचाया। और निश्चय किया कि पारणे के लिए अब नगर में नहीं जाऊँगा। मुनि तुँगिकागिरी वन में पधार गये वहाँ एक मृग उनके पास रहने लगा, जहाँ भी वन में कोई अहार करता वे मुनि को उधर ले जाता। उस वन में कोष्ठादि के लिए कुछ लोग आते, मृग उधर ही ले जाता। एक दिन कुछ सुथार रथ बनाने के लिए वन मे लकड़ी लेने आए, दोपहर को वृक्ष के नीचे जब अहार करने लगे तो मृग मुनि को उनकी तरफ ले गया। सुथारों ने मृग के पीछे मुनि आते देखकर कहा अहोभाग्य वन में महामुनि अहार ग्रहण कर ले तो हमारा

भोजन सार्थक हो जाएगा। अहार दान देकर सुथार, मृग और मुनि वृक्ष के नीचे बैठ गये, कि वृक्ष की एक शाखा टूट कर उन तीनों पर गिरी और तीनों का प्राणान्त हो गया। मुनि बलदेव, सुथार और मृग तीनों ही ब्रह्म देवलोक में पद्मोत्तर विमान में देवपन में उत्पन्न हुए। मुनि ने अपने अवधिज्ञान से भ्राता स्नेह को वालुका प्रभा में देखा वे उसे लाना चाहते थे, परन्तु वे अशक्य बात थी। वे लौट गये।

भवभ्रमण करते श्री कृष्ण का जीव आने वाली चौबीसी में जीर्थकर पद प्राप्त करेंगे।

जराकुमार का पाण्डु-मथुरा में पाण्डवों से मिलन

जब श्री कृष्ण को बाण लगा, तो जरा कुमार ने कहा- मैं हतभागी हूँ, तुम्हारी रक्षा के लिए मैं वनवासी हो गया परन्तु मेरा दुर्भाग्य कि मैं तुम्हारे प्राणों का संहार कर बैठा।

श्री कृष्ण संक्षेप में द्वारिका दाह, यादव कुल का विनाश सुनाते हुए कौस्तुभमणि दी और कहा- हमारे यादव कुल में केवल तुम ही बचे हो, अतः पाण्डवो को यह मणि दिखाकर तुम उनके पास ही रहना। शीघ्र प्रस्थान करो, नहीं तो बलराम तुझे मार डाले गा।

मुसलावेशपायः खण्डकृतेषुर्लुब्धको जरा।

मृगास्याकारं तच्चारणं, विव्याध मृगशंकया॥ 33॥

श्रीमद्भागवत, स्कन्ध11, अध्याय 30

॥ जय श्री कृष्ण ॥

